

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश



वर्ष 51

जनवरी-फरवरी-मार्च
2022

अंक 3

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका विषय-सूची

प्रवर्तक सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा पोस्ट—महोबाजार जिला—गोंडा, उ०प्र०	कविता जीवन मुक्त सोई मुक्ता हो दोहे अब पुनः नहीं है मरना जी	लेखक सद्गुरु कबीर राधाकृष्ण कुशवाहा हेमंत हरिलाल साहू	पृष्ठ 1 35 37
आदि संपादक सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब	स्तंभ पारख प्रकाश / 2 बीजक चिंतन / 32	व्यवहार वीथी / 12 परमार्थ पथ / 17	
संपादक धर्मेन्द्र दास	लेख साधना पथ में सावधानी स्वप्न के परिप्रेक्ष्य में कुदरत का ईसाफ असल जिदगी अच्छा होता है ज्ञानपरक बातें कहना सुखी जीवन की चाबी असंगता	भूपेन्द्र दास विवेक दास साध्वी समता धर्मेन्द्र दास डॉ. सत्योत्त सिंह गुरुदेव दास	7 9 15 24 36 38 42
आदि व्यवस्थापक प्रेम प्रकाश	कहानी कन्यादान	श्री विजय चित्तौरी	20
मुद्रक एवं प्रकाशक गुरुभूषण दास पारख प्रकाश इंटरनेट पर www.kabirparakh.com			
वार्षिक शुल्क : 50.00 एक प्रति : 13.00 आजीवन सदस्यता शुल्क 1250.00			

शीघ्र प्रकाश्य

धरती पर स्वर्ग

लेखक—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी

जीवन में किसने क्या पाया और क्या खोया इसका कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्व है किसका मन कैसा है। मन सुलझा हुआ शांत-संतुष्ट है तो हर जगह सुख-ही-सुख, आनंद-ही-आनंद है और यदि मन उलझा हुआ अशांत-असंतुष्ट है तो हर जगह दुख-ही-दुख है। मन ही स्वर्ग बनाता है और मन ही नरक बनाता है। यदि लोग प्राणिमात्र के प्रति देवत्व-बुद्धि एवं भगवद् भावना रखकर एक-दूसरे के साथ प्रेम-सेवा, करुणा-समता का तथा सबके साथ सत्यता एवं ईमानदारीपूर्वक व्यवहार करने लग जायें तो यह धरती स्वर्गमय ही नहीं अपितु साक्षात् स्वर्ग बन जायेगी। प्रस्तुत पुस्तक 'धरती पर स्वर्ग' परमपूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा विभिन्न जगहों पर विभिन्न समयों पर दिये गये प्रवचनों का संकलन है।

बीजक : पारख प्रबोधिनी व्याख्या

(प्रथम खण्ड : तेईसवां संस्करण, द्वितीय खण्ड : इक्कीसवां संस्करण)

बीजक सद्गुरु कबीर की सर्वथा मौलिक एवं सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। मानव-जीवन के सरल व्यावहारिक पक्षों के साथ अध्यात्म और दर्शन के गूढ़ पक्षों का इसमें बहुत ही सरल, सहज तथा सटीक चित्रण किया गया है। समाज, व्यवहार, धर्म, दर्शन तथा परमार्थ की बहुत सारी शंकाओं का समाधान इसमें बहुत ही सुंदर ढंग से हुआ है। सद्गुरु कबीर ने जिस निर्भीकता के साथ मूल पद कहा है उसी निर्भीकता के साथ उसकी व्याख्या भी इस पारख प्रबोधिनी व्याख्या में की गई है। तर्कयुक्त चिंतन तथा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों एवं साक्ष्यों के कारण वर्ण्य विषय अत्यंत सजीव बन गया है। प्रथम खण्ड, पृष्ठ 992, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ 960, मूल्य— प्रथम खण्ड 275 रु०, द्वितीय खण्ड 275 रु०।

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि आप महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि अगली दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो जाए तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र पढ़ाए जाने के लिए समय अपना ग्राहक नं. अवश्य लिखें।

एक प्रति 13 रुपये

वार्षिक 52 रुपये

आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

ग्राहक नं०

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज-211011

फोन : 9451369965, 9451059832

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo.com

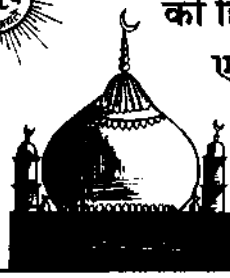
कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस प्रा.लि., पन्ना लाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



पारव प्रकाश

आशा तजि माया तजै, मोह तजै अरु मान ।
हरष शोक निन्दा तजै, कहैं कबीर सन्त जान ॥ कबीर साखी ॥

वर्ष 51]

प्रयागराज, माघ, वि. सं. 2078, जनवरी 2022, सत्कबीराब्द 623

[अंक 3

जीवन मुक्त सोई मुक्ता हो ।

जब लगि जीवन मुक्ता नाहीं, तब लगि सुख दुख भुक्ता हो ॥टेक॥
देह संग न होये मुक्ता, मुये मुक्ति कहैं होई हो ।
तीरथ वासी भये न मुक्ता, मुक्ति न धरनी होई हो ॥ 1 ॥
जीवत भ्रम की फाँस न काटी, मुये मुक्ति की आशा हो ।
जल का प्यासा जो नर होवै, सपने फिरत पियासा हो ॥ 2 ॥
होय अतीत बंधन से छूटे, जहँ इच्छा तहँ जाई हो ।
बिना अतीत सदा बंधन में, कतहूँ जान न पाई हो ॥ 3 ॥
आवागमन से गये छूटकर, सुमिर राम अविनाशी हो ।
कहैं कबीर सोई जन गुरु है, काटी भ्रम की फाँसी हो ॥ 4 ॥

x

x

x

कौन विचार करत हो पूजा, आतम राम अवर नहीं दूजा ।
बिन प्रतीतैं पाती तोड़ै, ग्यान बिना देवलि सिर फोड़ै ॥
लुचरी लपसी आप संघारे, द्वारै ठाढ़ा राम पुकारै ।
पर आतम जौ तत्त बिचारै, कहहिं कबीर ताकै बलिहारै ॥

हरिजन हंसदशा लिये डोले

मनुष्य मात्र भौतिक पदार्थों का बंडल नहीं है। भौतिक पदार्थों से तो एड़ी से चोटी तक दिखाई पड़ने वाले स्थूल शरीर का निर्माण हुआ है, जो जड़ है। इसके भीतर एक ऐसा तत्त्व निवास कर रहा है, जो इसमें निवास करते हुए भी इससे सर्वथा भिन्न है, जो ज्ञान-गुण संपन्न है और शरीर, मन, इंद्रियों का प्रेरक है। मानव जीवन भौतिक और आध्यात्मिक दोनों तत्त्वों के संयोग से खड़ा है। न तो भौतिक क्षेत्र की उपेक्षा की जानी चाहिए और न आध्यात्मिक क्षेत्र की। आत्म और अध्यात्म की उपेक्षा करने वाला कभी पूर्ण मानसिक-आत्मिक शांति-सुख, संतुष्टि एवं प्रसन्नता का अनुभव कर ही नहीं सकता तो भौतिक क्षेत्र एवं शरीर की उपेक्षा करने वाला कभी स्वस्थ जीवन जी नहीं सकता है। जिस प्रकार भौतिक क्षेत्र में विकास की आवश्यकता है उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी। दोनों क्षेत्र के विकास से ही जीवन-जगत में संतुलन आता है। भौतिक क्षेत्र के विकास से जीवन जीने में सुविधा होती है तो आध्यात्मिक क्षेत्र के विकास से कल्याण-मोक्ष की प्राप्ति होती है जो मानव जीवन का उद्देश्य है। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्र के विकास को ही महर्षि कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शन में धर्म की संज्ञा दी है। उन्होंने कहा है—यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

सांसारिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए भौतिक विकास की आवश्यकता है इससे इंकार नहीं किया जा सकता परंतु यह बात भी अच्छी तरह से समझ लेना होगा कि भौतिक विकास चाहे कितना भी क्यों न हो जाये उससे किसी को पूर्ण मानसिक शांति-संतोष की प्राप्ति नहीं हो सकती और न किसी को तनाव, चिन्ता, भय, जलन आदि से छुटकारा मिल सकता है। यह सब केवल आध्यात्मिक विकास-आत्मज्ञानपूर्वक संयम-साधना से ही संभव है। धर्म के क्षेत्र में जितने भी पूजा-पाठ, प्रार्थना-नमाज, नाम-मंत्र-

जप, ध्यान-चिन्तन, भक्ति-भजन आदि प्रचलित हैं सब इसी के लिए हैं। यदि यह सब करने से मन के विकार घटकर शांति-सुख-संतोष की वृद्धि हो रही है तब तो आदमी सही दिशा में आगे बढ़ रहा है और यदि मनोविकार नहीं घट रहे हैं, मन की पीड़ा-जलन नहीं मिट रही है और शांति-सुख, संतोष का अनुभव नहीं हो रहा है तब यही कहा जायेगा कि आदमी धर्म के नाम पर कर्मकांड की भूलभूलैया में ही उलझकर रह गया है।

प्रायः हर मतावलंबी अपने को अन्य मतावलंबियों की अपेक्षा ज्यादा धार्मिक, भगवद्भक्त और साधनापरायण समझता और मानता है। इतना ही नहीं एक ही मत-परंपरा की एक शाखा के अनुयायी अपने को अपने ही मत-परंपरा की अन्य शाखाओं के अनुयायियों से ज्यादा धार्मिक-साधनासंपन्न मानते-समझते हैं। हर जगह चढ़ा-ऊपरी, अहं-हीनत्व की भावना है। इन सबको देख-सुनकर किसी ने कबीर साहेब से पूछा—साहेब, सच्चा भगवद्भक्त, धर्मपरायण कौन है और उसके लक्षण क्या हैं? हम उन्हें कैसे पहचानें? इसके उत्तर में कबीर साहेब ने कहा—

हरिजन हंसदशा लिये डोले, निर्मल नाम चुनी चुनि बोले।

मुक्ताहल लिये चोंच लोभावै, मौन रहे कि हरियश गावै ॥

अर्थात्—जो नीर-क्षीर का विवेक करते हुए स्वरूपस्थिति की रहनी रूपी हंसदशा को धारणकर संसार में विचरण करते हैं और चुन-चुनकर निर्मल नाम (आत्मज्ञान) की पवित्र वाणी बोलते हैं, मुख से ज्ञान तथा सदाचरण के मोती बिखेरकर जिज्ञासुओं को सन्मार्ग की तरह प्रेरित-आकर्षित करते हैं, जो या तो मौन रहते हैं या जब बोलते हैं तब हरियश-सत्यज्ञान की ही चर्चा करते हैं—ऐसे संतजन ही सच्चा भगवद्भक्त, एवं धर्मपरायण हैं।

उक्त दोनों पंक्तियों में सद्गुरु कबीर ने सच्चे भगवद्भक्त, धर्मनिष्ठ, साधनापरायण ज्ञानी संत का जो लक्षण बताया है वह एक वास्तविकता है, इसका किसी मत-पंथ-संप्रदाय-परंपरा से कोई लेना-देना नहीं है। यह एक सार्वभौमिक तथ्य है। सत्य सार्वभौमिक ही होता है। उक्त पंक्तियों में हरिजन, हंसदशा, निर्मल नाम,

मुक्ताहल और हरियश ऐसे पद हैं जिन पर अधिक चिंतन की आवश्यकता है। यहां एक-एक को अलग-अलग समझेंगे—

1. हरिजन—हरि में रमण करनेवाला, हरि की उपासना करने वाला हरिजन है। हरि ज्ञान है और ज्ञान आत्मा का, चेतन-जीव का स्वभाव है, अतः जो आत्म ज्ञानी है, जिसने यह जान लिया है कि जिस परमतत्त्व को, मोक्ष-निर्वाण-कैवल्य को मैं पाना चाहता हूँ, वह मेरा अपना ही स्वरूप है, ऐसा जानकर जो आत्मस्थित है वह हरिजन है। जो संसार से, संसार के राग-रंग एवं प्रपंच से, सांसारिक विषय-भोगों से उदास-उपराम होकर आत्मलीन है—ऐसा संत हरिजन है। जिसने अपने मन-इंद्रियों पर पूर्ण स्ववशता प्राप्त कर ली है, जिसके मन-इंद्रियों की सारी चंचलता एवं बहिर्मुखता शांत हो गयी है, जो अंतर्मुख होकर आत्मशांत है वह हरिजन है।

जिसकी सारी सांसारिक वासनाएं निवृत्त हो गयी हैं, सारी कामनाएं बुझ गयी हैं, जो सर्वत्र सबसे निर्मोह, निष्काम और अनासक्त है वह हरिजन है। जिसने संसार की वास्तविकता समझ ली है कि सारा संसार परिवर्तनशील एवं क्षणभंगुर है, यहां कुछ भी स्थिर नहीं है, यदि कुछ स्थिर है तो अपना आत्मस्वरूप है, जो मुझसे कभी अलग नहीं हो सकता, मैं से मैं कैसे अलग हो सकता है, ऐसा समझकर जो आत्मलीन है वह हरिजन है। जो शरीर निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं भोजन-वस्त्र आदि को औषधवत अनासक्त होकर ग्रहण करता है और जीवन यात्रा में मिले प्राणियों के साथ विशुद्ध प्रेम-सेवा का व्यवहार करते हुए सबसे उसी प्रकार निर्लेप रहता है, जिस प्रकार कमल-पत्र जल में रहते हुए जल से निर्लेप रहता है वह हरिजन है। इसी के लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—

कमल पत्र हैं संतजन, रहें जगत के मांहि।

बालक केरि धाय जो, आपन जानत नाहिं ॥

दुनिया में अनेक मत-पंथ-संप्रदाय हैं, सबके अपने पूजा-पाठ-कर्मकाण्ड के नियम, विधि-विधान हैं, अपनी वेशभूषा हैं। यह सब बहुत बाह्य एवं गौण हैं। इनमें उलझने की आवश्यकता नहीं है। जो इनमें उलझ

गया वह कभी सत्य-तत्त्व को, आत्मतत्त्व-रामतत्त्व को समझ नहीं सकता। सच्चे संत कहीं के भी हों वे कभी इनको महत्त्व नहीं देते। वे तो संतत्त्व को, जीवन की रहनी को ही महत्त्व देते हैं।

सच्चे संत, सच्चा भक्त एवं सच्चे धार्मिक व्यक्ति की पहचान है—निर्लोभता एवं निष्कामता। काम को महत्त्व देने वाला कभी राम को (आत्मा को, सत्य को) नहीं समझ सकता। जिसका मन कामनाओं से भरा होगा, कामनाओं के पीछे दौड़ रहा होगा वह कभी शांत-संतुष्ट नहीं रह सकता। वह सदैव अशांत और दुखी ही रहेगा और सच्चे हरिभक्त, भगवद्भक्त, आत्मसाधक संत की पहचान है दुखी न होना। मान्यताएं अलग हो सकती हैं, विश्वास अलग हो सकता है, परंतु सच्चे हरिभक्त और आत्मज्ञानी के मन में कभी दुनियावी कामना होगी ही नहीं।

कुछ लोगों का विश्वास है कि आत्मा से परमात्मा अलग है और कुछ लोगों का विश्वास है कि आत्मा ही परमात्मा है। जो यह मानता है कि परमात्मा आत्मा से अलग है और वही सारे सुखों का, आनंद का, कल्याण का धाम है, उसको पाकर या उसमें मिलकर ही जीवन कृतार्थ-सफल हो सकता है, वही मानव जीवन का लक्ष्य है, यदि उसको पाना या उसमें मिलना है तो बाहर सब कुछ का लोभ-मोह छोड़ना पड़ेगा, फिर वह किसके लिए लोभ-मोह करेगा। वह तो पूर्ण निष्काम एवं निर्लोभ ही रहेगा। जो यह समझता है कि मेरा अपना आपा-आत्मा ही परमात्मा है, परमात्मा मुझसे अलग नहीं है, मुझसे अलग जो कुछ भी है वह कभी मेरा नहीं हो सकता फिर वह किसके लिए लोभ-मोह करेगा। वह तो सबसे सब समय पूर्ण निर्लोभ, निष्काम ही होगा। पूर्ण निर्लोभता-निष्कामता एवं आत्मलीनता संतदशा है। इस दशा में जो भी स्थित है वही हरिजन है। जो सब तरफ से निर्लोभ, निर्मोह, निष्काम, अनासक्त होकर आत्मलीन, आत्मतुष्ट, आत्मरत, आत्मस्थ है उसे आप सच्चा भक्त, धार्मिक, संत, महात्मा, हरिजन आदि कुछ भी कहें उसकी वास्तविकता में कुछ फर्क नहीं पड़ता। अब उसका सब काम पूरा हो चुका है तथा अब उसका कोई काम शेष नहीं रह गया है। यद्यपि प्रारब्धांत तक सहज भाव से लोकोपकार के

काम वे भी करते हैं, व्यावहारिक जिम्मेदारी उनको भी निभानी पड़ती है, परंतु सब कुछ करते हुए भी वे कुछ नहीं करते क्योंकि उनके अंदर कुछ पाने, करने की कामना ही नहीं रह गयी है। इसी के लिए गीता (3/17-18) में कहा गया है—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥

अर्थात् जो अपने आप (आत्मा) में प्रीति करता है, अपने आप में ही तृप्त रहता है और अपने आप में संतुष्ट रहता है, उसे कुछ करना शेष नहीं रहता। क्योंकि उसका इस संसार में कर्म करने का कोई प्रयोजन नहीं है और न कर्म नहीं करने से कोई प्रयोजन है। उसका प्राणिमात्र से कोई स्वार्थ का संबन्ध नहीं है।

2. हंसदशा—“हरिजन हंसदशा लिये डोले” हरिजन अर्थात् आत्मज्ञानी, आत्मलीन संत संसार में हंसदशा धारणकर विचरण करते हैं। हरिजन कौन है ऊपर इसकी व्याख्या की जा चुकी है। समझना यह है कि हंसदशा क्या है।

हंस एक सफेद रंग का पक्षी होता है। उसमें दो विशेषताएं बतायी जाती हैं—एक यह कि वह मिश्रित दूध-पानी में से दूध ले लेता है और पानी छोड़ देता है, दूसरी यह कि वह मोती चुगता है। इसका लक्ष्यार्थ यह है कि जो मनुष्य कर्तव्य-अकर्तव्य, सत्य-असत्य, मोक्ष-बंध एवं आत्म-अनात्म का विवेक कर कर्तव्य, सत्य, मोक्ष, आत्म को ग्रहण कर लेता है और अकर्तव्य, असत्य, बन्ध, अनात्म को छोड़ देता है तथा ज्ञान के मोती चुगता है अर्थात् निष्पक्ष होकर सब जगह से ज्ञान ग्रहण करता है वह हंस है।

लोक में हंस को आत्मा-जीव का प्रतीक माना गया है। अर्थात् आत्मा-जीव को भी हंस कहा जाता है। जब किसी का शरीर छूट जाता है तब लोग यही कहते हैं कि भैया, हंसा तो उड़ गया, अब तो केवल मिट्टी या ठट्टरी पड़ी है। जिसे शरीर और आत्मा (जीव) की भिन्नता का स्पष्ट बोध है वह हंस है। परन्तु शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध हो जाने मात्र से किसी का कल्याण नहीं हो जाता, उसके लिए तो वैसी रहनी की

आवश्यकता है। जिस प्रकार जीव स्वरूपतः शुद्ध-बुद्ध निर्मल-निर्विकार है उसी प्रकार जिसके तन-मन-वचन के सारे कर्म-व्यवहार-आचरण शुद्ध, निर्मल, निर्विकार है वह हंस है। जीवन-आचरण की पवित्रता-निर्दोषता, मन की निर्मलता-निर्विकारता हंस दशा है।

शरीर और आत्मा की भिन्नता को स्पष्ट रूप से जानकर देहभाव से ऊपर उठकर आत्मभाव में लीनता-मग्नता हंसदशा है। ज्ञानी से ज्ञानी जीवन्मुक्त कृतार्थात्मा पुरुष को भी प्रारब्ध शरीर रहे तक कुछ न कुछ सेवा-साधना का काम करना ही होता है। निजस्वरूप में स्थित होकर निष्काम भाव से सेवा-साधना परायण रहना हंसदशा है। निष्कामभाव से कर्म करते रहने पर कोई भी कर्म उसके लिए बंधन का कारण नहीं होता, क्योंकि उस कर्म में उसे कुछ पाने की कामना नहीं रहती, इसलिए वह कर्म करते हुए भी अकर्मी रहता है। इसी के लिए सद्गुरु कबीर ने कहा है—कर्म करे और रहे अकर्मी।

स्वतः अजन्मा, शुद्ध और निर्विकार होने से यह जीव असंग है। मूलतः यह असंग और अकेला है परन्तु अनादि स्वरूप-भूल के कारण अपनी असंग दशा को भूलकर यह अनेक जगह अपने आप को जोड़ लिया है। यह जोड़ना ही उसके लिए दुख, पीड़ा एवं बंधन का कारण बन गया है। इस मानव जीवन में सबके साथ निश्चल-निस्स्वार्थ भाव से प्रेम-सेवा का व्यवहार करते हुए, सबके साथ रहते हुए अपने को सबसे अलग, अकेला और असंग समझना और उस भाव में मन का स्थित रहना हंसदशा है। सारी अहंता-ममता, मैं-मेरा एवं कर्ता-भोक्ता भाव का भ्रम मिटकर मन का आत्मभाव में स्थित हो जाना हंसदशा है। उसी दशा के लिए सांख्य कारिका में कहा गया है—

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम् ।

अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥ 64 ॥

अर्थात्—न मैं कियावान हूं, न मेरा भोक्तृत्व है और न मैं कर्ता हूं जब इस प्रकार का पूर्ण अभ्यास हो जाता है तब सम्पूर्ण भ्रमों का अंत होकर विशुद्ध केवल—असंगत्व ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

सार यह है कि जीवन-आचरण की पवित्रता, मन-वाणी-कर्मों की निर्मलता-निर्विकारता, देह भाव का

विसर्जन होकर मन का आत्मभाव-असंगदशा में लीनता—हंसदशा है। सभी सच्चे संतों की यही रहनी होती है। जो इस रहनी में रहते हैं वे ही सच्चे संत हैं, हरिजन हैं। सच्चे हरिजन-संत इसी हंसदशा में स्थित होकर जीवन-यापन करते हैं।

3. निर्मल नाम चुनी चुनि बोले—सच्चे हरिजन-संत हंसदशा-जीवन आचरण की पवित्र रहनी और आत्मलीनता की स्थिति में स्थित होकर संसार में विचरण करते ही हैं, उनकी एक दूसरी विशेषता यह होती है कि वे चुन-चुनकर निर्मल नाम का उच्चारण करते हैं।

यह निर्मल नाम क्या है? ऐसा कौन-सा नाम है जिसे सभी लोग निर्मल-पवित्र मानते हैं। नाम तो नाम है। न कोई नाम निर्मल-पवित्र होता है और न अपवित्र। नाम में पवित्र और अपवित्र की भावना तो मनुष्य अपने संस्कार और मान्यतानुसार करता है। ऐसा कोई भी नाम नहीं है जिसे दुनिया में सभी लोग पवित्र या अपवित्र मानते हों।

यहां निर्मल नाम लाक्षणिक अर्थ में है। कबीर साहेब प्रायः लक्षणा में अपनी बात कहते हैं, जैसे उन्होंने एक जगह कहा है—

एक नाम है जगत पियारा ॥ बीजक, रमैनी 77 ॥

अर्थात् एक नाम संसार के सारे लोगों को प्रिय है। वह नाम है—अपना आपा, आत्म अस्तित्व। अपने प्राण, अपना अस्तित्व, अपनी आत्मा से बढ़कर आदमी को कुछ भी प्रिय नहीं है, क्योंकि वह सब कुछ अपने लिए, अपनी शांति, अपने कल्याण के लिए ही करता है।

यहां निर्मल नाम का अर्थ है—ज्ञानपूर्ण वाणी। चुन-चुन कर बोलने का अर्थ है—विचारपूर्वक बोलना। आत्मज्ञानी सन्त ऐसा कुछ नहीं बोलते जिसे सुनकर दूसरों के दिल को ठेस पहुंचे, उनका मन क्षुब्ध हो और उन्हें गलत प्रेरणा मिले। वे निरर्थक कुछ नहीं बोलते, किन्तु वे जो बोलते हैं सार्थक और सारगर्भित बोलते हैं। विचारपूर्वक जो भी बोला जायेगा वह सार्थक और सारगर्भित ही होगा। सत्योपदेश, सत्यज्ञान की चर्चा करना ही निर्मल नाम बोलना है। मत-मजहब-संप्रदाय जनित सारे भेदभाव एवं पक्षपात से ऊपर उठकर निष्पक्ष

ज्ञान कथन करना चुन-चुनकर निर्मल नाम बोलना है। सच्चे सन्त, अपने मत-मजहब, संप्रदाय-परंपरा के नियमों का पालन करते हुए भी सारी सांप्रदायिक भावनाओं से परे होते हैं। उनके मन में किसी बात को लेकर हठाग्रह, दुराग्रह एवं पूर्वग्रह नहीं होते। ऐसे सन्तों के लिए ही सद्गुरु कबीर ने कहा है—निष्पक्ष होय के हरि भजै, सोई सन्त सुजान।

दुनिया में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसे वाणी का वरदान मिला हुआ है, परन्तु इस वरदान का सही उपयोग करने वाले बिरले ही हैं। एक विचारक ने लिखा है कि मनुष्य का बच्चा जन्म लेने के दो-तीन साल बाद ही बोलना सीख जाता है परन्तु कब, क्या और कैसे बोलना चाहिए वह जीवनपर्यंत नहीं सीख पाता। बोलना तो है क्योंकि मनुष्य-जीवन का अधिकतम व्यवहार और ज्ञान का आदान-प्रदान वाणी द्वारा ही होता है, परन्तु ध्यान यह रखना है कि जो बोला जाये विचारपूर्वक ही बोला जाये। कबीर साहेब कहते हैं—हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आन। जो हृदय-तराजू में तौल कर, विवेक-विचारपूर्वक बोला जायेगा वह सबके लिए मंगलकर ही होगा। हृदय-तराजू में तौलकर विवेक-विचारपूर्वक बोलना ही चुन-चुनकर निर्मल नाम बोलना है। सच्चे हरिभक्त, हरिजन, ज्ञानी सन्तों का यह एक खास गुण और लक्षण होता है।

4. मुक्ताहल लिये चोंच लोभावै—कहा जाता है कि हंस मोती चुगता है। वह अपनी चोंच में मुक्ता-मोती लेकर दूसरे हंसों को भी मुक्ता-मोती चुगने का लालच देता, प्रेरित करता है। यहां हंस निर्मल जीवन सन्त हैं और मोती ज्ञान है। आत्मज्ञानी सन्त सदुपदेश देकर, ज्ञान के मोती बिखेरकर जिज्ञासुओं-मुमुक्षुओं एवं साधक भक्त-सज्जनों को सन्मार्ग की तरफ प्रेरित करते हैं। यदि सन्तगण-ज्ञानीजन ज्ञान का प्रचार न करें, सदुपदेश न दें तो जिज्ञासुओं-मुमुक्षुओं एवं आम जनता को सहारा एवं प्रेरणा कैसे मिले!

यह नियम है कि जो जिस मार्ग में चलता-रहता है अपने-अपने प्रेमियों को भी उसी मार्ग में लाने-चलाने का प्रयास करता है और प्रेरित करता है। ज्ञानी ज्ञान की तरफ तो अज्ञानी अज्ञान की तरफ, सद्गुणी सद्गुण की तरफ तो दुर्गुणी दुर्गुण की तरफ। श्री विशाल साहेब

कहते हैं—जो जेहि मारग में रहै, तेहि दिशि लावन हेत ।
निजनिज प्रेमी के मिलत, तैसेहि शिक्षा देत ॥

कहा जाता है जब तथागत बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ तब उनके मन में विचार आया कि जो ज्ञान मुझे मिला है उसका जनता में प्रचार करूं ताकि जैसे मैं ज्ञान प्राप्तकर दुखमुक्त हुआ हूं वैसे अन्य लोग भी दुखमुक्त हो सकें, परन्तु उनके मन में हुआ कि इस दुनिया में ज्ञान की बातें सुनने वाले हैं कहां ! सब तो अपने दैहिक स्वार्थ-भोग के पीछे भागे जा रहे हैं। इसलिए ज्ञान-प्रचार की बातें छोड़ो और जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसमें आनंदमग्न-मस्त रहो। थोड़ी देर पश्चात उन्होंने पुनः सोचा कि जैसे मैं दुखों से छुटने के लिए तड़प रहा था वैसे अन्य लोग भी हो सकते हैं, परन्तु उन्हें दुख, दुख का कारण और निवारण का सही ज्ञान न होने से रास्ता नहीं मिल रहा है। मेरे ज्ञान-प्रचार से उन्हें सहारा मिल जायेगा ऐसा सोचकर उन्होंने अपने प्राप्त ज्ञान का प्रचार करना शुरू किया और उसका बहुत ही सुन्दर परिणाम सामने आया और दुनिया को बड़ा लाभ हुआ ।

जिस आदमी के पास जो कुछ भी अच्छाई है उसे उसका प्रचार जरूर करना चाहिए जिससे अन्यो को भी उसका लाभ मिल सके। जब एक बुरा आदमी अपनी बुराई का प्रचार करना नहीं छोड़ता तब अच्छे आदमी को अच्छाई का प्रचार अवश्य ही करना चाहिए। यह अच्छाई का, सद्गुणों का, सदाचार का, ज्ञान का प्रचार कर लोगों को इस दिशा में प्रेरित करना ही मुख में मोती लेकर लोगों को लुभाना है।

सन्त जन तो यह काम करते ही हैं हर भक्त-सज्जन साधक का भी यह कर्तव्य है कि वह स्वयं सन्मार्ग-सदाचार-सद्धर्म के मार्ग पर चलते हुए अन्यो को भी इस दिशा में चलने को प्रेरित करें। यह अपने इष्ट-गुरु के प्रति उनकी सच्ची भक्ति होगी।

5. मौन रहे कि हरियश गावै—सच्चे भक्त-सन्त का यह भी एक खास गुण एवं लक्षण होता है कि वे व्यर्थ के विवाद और बकवाद को छोड़कर या तो मौन रहते हैं या हरियश गाते हैं, अर्थात् सत्य ज्ञान की चर्चा करते हैं और उसका प्रचार करते हैं।

जिसे आत्मज्ञान का, आत्मशांति-आत्मसंतुष्टि का मोती मिल गया है, जो पवित्राचरणपूर्वक आत्मलीनता

की हंसदशा में स्थित है, जिसका मन पूर्ण निर्मल, निर्विकार है, जो सब तरफ से निर्मोह, निर्लोभ, निष्काम एवं अनासक्त है वह किससे और किसलिए विवाद एवं एवं बकवाद करेगा। वह तो मौन होकर अपने आप में मस्त रहेगा। इसलिए सद्गुरु कबीर कहते हैं—मन मस्त हुआ फिर क्या बोले।

इसका अर्थ यह नहीं है कि आत्मज्ञानी सन्त सदा के लिए मौन हो जाते हैं, वे किसी से कुछ नहीं बोलते। अर्थ इतना ही है कि वे विवाद से दूर रहते हैं। अपात्रों के सामने नहीं बोलते किन्तु सत्पात्र जिज्ञासु मुमुक्षुओं के सामने हरियश गाते हैं—सत्य ज्ञान की चर्चा करते हैं। ऐसे ही संतों के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

की मुख पट दीन्हें रहे, यथा अर्थ भाषंत।

तुलसी इस संसार में, सो विचारयुत सन्त ॥

हरियश गाने का अर्थ कथा-कीर्तन करना या महिमापूर्वक किसी का गुणगान करना नहीं है, किन्तु अर्थपूर्ण सकारात्मक कथन करना, विवेक-विचारपूर्वक व्यावहारिक-पारमार्थिक उन्नति की चर्चा करना, शरीर-संसार, विषय-भोगों की क्षणभंगुरता, आपातरमणीयता, दुखरूपता एवं बंधनरूपता की चर्चा करना, आत्मा की अमरता-निर्विकारता की चर्चा करना—हरियश गाना है।

जिन बातों को सुनकर दोष-दुर्गुण, विषय-विकार आदि की तरफ से मन हटे; मन में दया, क्षमा, प्रेम, समता, एकता, सहिष्णुता, सेवा, संयम-साधना के भाव जगे, सन्मार्ग की तरफ प्रेरणा मिले—उन बातों का कथन करना हरियश गाना है। मान्यता जिसकी चाहे जो हो उपर्युक्त बातों की आवश्यकता सबको है। इनके बिना किसी के मन की जलन न तो मिट सकती है और न किसी को आत्मतुष्टि-आत्मशांति मिल सकती है।

सारतः जो संसार के राग-रंग-प्रपंच से हटकर आत्मलीन है वह हरिजन है, पवित्र आचरण में रहना और आत्मलीनता हंसदशा है, विवेकपूर्ण कथन करना चुन-चुनकर निर्मल नाम बोलना है, लोगों को सन्मार्ग की तरफ प्रेरित करना मुख में मोती रखकर लुभाना है और शरीर-संसार की नश्वरता एवं आत्मा की अमरता की चर्चा हरियश गाना है—यही सबके लिए कल्याण का मार्ग है और यही मानव जीवन का उद्देश्य है तथा इसी में जीवन की सफलता है।

—धर्मेन्द्र दास

साधना पथ में सावधानी

लेखक—भूपेन्द्र दास

1. आपने घड़ी अनेकों बार देखी होगी, परन्तु गौर से आपने नहीं देखा होगा। आज मैंने घड़ी को बहुत गौर से निहारा। उसमें तीन सुइयां लगी हुई हैं। अपेक्षया सबसे छोटी और मोटी सुई जो घण्टे को दर्शाती है, सबसे धीमी चलती है। फिर मिनट वाली सुई घंटे वाली सुई की अपेक्षा कुछ तेज चलती है परन्तु सेकेन्ड वाली सुई जो प्रत्येक घड़ी में सबसे पतली होती है वह रुकती ही नहीं है। निरंतर चलती रहती है। वह घूमती हुई मानो कुछ कहती है कि इतनी तेजी से सिर्फ मैं ही नहीं चल रही हूँ बल्कि समय भी उतनी तेजी से चल रहा है। अतः जिसने अपने समय को पहचान लिया और समय के साथ अपने आपके परिशोधन में अथवा समाज की सेवा में कुछ रचनात्मक कार्यों में लग गया उसका जीवन सफल हो जाता है। आइये, हम भी अपने समय के किसी भी क्षण को व्यर्थ न जानें दें। उसका सदुपयोग करें और अपने आप का परिमार्जन करें।

2. महाभारत के युद्ध में गुरु द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की। अर्जुन उपर्युक्त स्थल से काफी दूर जा चुके थे। और चक्रव्यूह का भेदन करना अर्जुन के अलावा कोई नहीं जानता था। पांडव पक्ष के सभी श्रेष्ठ योद्धा इसी चिंता में थे कि अब क्या होगा? इसी बीच अभिमन्यु आया और कहा कि चक्रव्यूह का भेदन मैं कर तो सकता हूँ, परन्तु मैं छः दरवाजा तक ही तोड़ सकता हूँ। सातवां दरवाजा तोड़ना मैं नहीं जानता और बाहर निकलना नहीं जानता। इतना सुनकर भीम आदि योद्धाओं ने कहा—जब छः दरवाजा तुम तोड़ सकते हो तो सातवां दरवाजा हम सब मिलकर तोड़ देंगे। हम सभी तुम्हारे साथ चलेंगे। परिणाम क्या हुआ? उस चक्रव्यूह में सिर्फ अभिमन्यु ही प्रवेश कर पाया बाकी सबके सब बाहर ही रह गये और अभिमन्यु छलपूर्वक मारा गया। यह सारा संसार ही चक्रव्यूह है। लोग इसमें घुसना (प्रवेश करना) तो जानते हैं पर इससे बाहर

निकलना नहीं जानते। संसार में मायामोह का चक्रव्यूह जबरदस्त है। लोग इसमें एक बार प्रवेश करते हैं फिर बाहर निकल ही नहीं पाते। आश्चर्य होता है जब लोग ढोल-मंजीरा बजवाकर, नाच-गाकर सांसारिकता के चक्रव्यूह में प्रवेश करते हैं। फिर जीवन भर इसी चक्रव्यूह में पीसते चले जाते हैं।

कल एक भाई आया था आश्रम में। दो दिन तक आश्रम में ही रहा। कहता था साहेब जी, पारिवारिक तनाव इतना बढ़ गया है कि एक घंटा भी मैं शांति से बैठ नहीं पा रहा हूँ। इसी कारण मैं आश्रम में आया हूँ। ताकि आराम पा सकूँ। गृहस्थी में प्रवेश करना गलत नहीं है परन्तु पूरा जीवन उसी उलझन में बिता देना समझदारी नहीं है। समझदारी है दुनियादारी के भार को अपने से अलग करते जाना। इसका मतलब परिवार छोड़कर भाग जाना नहीं है। हां, जिसके अंदर पूर्ण विरक्ति का भाव आ जाये वह घर-परिवार छोड़कर विरक्त हो सकता है। शेष जो हैं उनका काम है वहीं रहकर बंधनों से अपने आप को अलग कर लेना। जिम्मेदारियों को निभाते हुए भी मोह-ममता की रस्सी को हलका रखना। मन से संसार के प्रति उदासीन, निष्पृह हो जाना। यही संसार रूपी चक्रव्यूह से अलग निकल जाना है।

3. जैसे कैंसर के मरीज को मालूम रहता है कि जल्दी ही मर जाना है और वह अपनी चल-अचल संपत्ति को व्यवस्थित करने में लग जाता है। ठीक ऐसे ही साधक के मन में सदैव मौत की याद बनी रहनी चाहिए। साधक की यही मनःस्थिति उसे मोक्ष प्रदान करायेंगी। साधक की वास्तविक संपत्ति जिसे व्यवस्थित करना है, वह ज्ञान, वैराग्य, विवेक, विचार, सहन-शीलता, दया, क्षमा, संतोष इत्यादि है। अनासक्ति, तटस्थता की साधना साधक की परम संपत्ति है। मरना तो निश्चित है पर मौत दस्तक दे इससे पहले कड़ी

मेहनतपूर्वक आत्मस्थिति की साधना में लग जाना चाहिए। निरंतर के अभ्यास और वैराग्य के द्वारा हमें अपने मन की वृत्तियों का निरोध करना चाहिए। सब समय यह विचार करना चाहिए कि क्या मिला हुआ है और क्या छूट जायेगा। किसने आदर किया, किसने निन्दा की। ये शब्दों का गुब्बारा अचानक फूट जाने वाला है। अतः चित्त का निरंतर स्वच्छ रहना, स्वरूपभाव का स्मरण रहना, जड़दृश्य का अभाव रहना, निज स्वरूप का भाव रहना, यही जीवन का परम फल है और साधक की असली संपत्ति है।

4. लकड़ी में पैदा हुए कीड़े ही लकड़ी को नष्ट करते हैं। लोहा को लोहा से उत्पन्न हुए जंग (मोरचा) ही नष्ट करता है। ऐसे मनुष्य को उसके अंदर से ही उत्पन्न हुए विकार ही नष्ट करते हैं। परन्तु मनुष्य अपने भीतर की ओर न झांककर बाहर से ही संतुष्ट होना चाहता है। इसलिए भीतर मलिनता और विकार भरे होने से बाहरी संसाधन व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं। आवश्यकता है भीतर को निर्मल बनाने की। जब अपना अंतःकरण पवित्र व शुद्ध हो जाता है तो कल्याण के लिए कोई बाहरी ईश्वर की कृपा पाने या यज्ञ-अनुष्ठान करने अथवा किसी तीर्थ वगैरह में जाकर सिर पटकने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः भीतर की गंदगी को भक्ति, सेवा, स्वाध्याय आदि के माध्यम से पवित्र करते चले।

5. कुछ मननीय बातें—

1. मत बोलो—यदि आप मीठा नहीं बोल सकते।

2. मत सुनो—यदि आप अपनी व अपनों की बुराई-आलोचना नहीं सुन सकते।

3. मत देखो—यदि आप अच्छा व कटु सत्य नहीं देख सकते।

4. मत सोचो—यदि आप भला व अच्छा नहीं सोच सकते।

5. प्रेम देकर प्रेम, शांति देकर शांति व मान देकर मान ही लें, फिर घृणा देकर घृणा की ओर क्यों बढ़ें।

6. किसी ने बहुत सुंदर कहा है—

अनुचित आहार-विहार से पेट खराब हो जाता है। आलस्य से दिन खराब हो जाता है। कर्कशा स्त्री से रात खराब हो जाती है। मूर्ख पुत्र से कुल खराब हो जाता है। झूठ बोलने से बात खराब हो जाती है। कटु भाषण से संबंध खराब हो जाता है। लोलुपता से नियत खराब हो जाती है। अनियमितता से स्वास्थ्य खराब हो जाता है। जरूरत से ज्यादा धन हो तो बुद्धि खराब हो जाती है। अपने कर्तव्यों का पालन न किया जाये तो मनुष्य का पूरा जीवन ही खराब हो जाता है।

7. वैज्ञानिकगण बताते हैं कि प्रथम अंतरिक्षयान अपोलो-11 से जब मनुष्य पहली बार चन्द्रमा में गये तो पृथ्वी के चारों तरफ गुरुत्वाकर्षण (लेयर लिमिट) की सीमा तक निकलने के लिए जितनी शक्ति लगी थी उतनी शक्ति 5 लाख किलोमीटर जाने और आने में नहीं लगी थी। यहां गुरुत्वाकर्षण है—इन्द्रियों से सुख-भोग की कुप्रवृत्ति आदि। यदि इन्द्रियों के आकर्षण की उस सीमा को हम तोड़ देते हैं तो फिर हम अपने स्वयं के लिए, परिवार व समाज अथवा देश के लिए बहुत ही अच्छा काम कर सकेंगे। इन्द्रियों में प्रबल गुरुत्वाकर्षण की शक्ति होती है जो हमें रचनात्मक कार्यों में लगने से रोकती है। इसीलिए किसी महापुरुष ने कहा था “जो समाज के लिए बड़ा काम करना चाहे वह विवाह के झंझट में न पड़े।” इन्द्रियों की गुलामी और आसक्ति में पड़कर जीव नरक भोगता है। अतः इन्द्रियजीत होकर एक स्वस्थ समाज की संरचना करने में हम अपना अमूल्य योगदान प्रदान करें।

□

जीवन नभ में सुख दुख के बादल आते जाते हैं।
है जीवन धन्य उसी का जो मन पर नहीं लाते हैं।
जो सुख दुख में उलझा है वह जीवन हार गया है।
जिसको सुख दुख झूठे हैं वह भव से पार गया है।
—सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब जी

स्वप्न के परिप्रेक्ष्य में

लेखक—विवेक दास

मैं नदी किनारे अपनी मस्तानगी में बैठा गुनगुना रहा था—

हे नाथ हम पर दया ऐसी करना ।
न भूलूँ जगत में कृपा दृष्टि करना ।
अनादी से गोते खाता रहा हूँ ।
अमित दुख नित मैं पाता रहा हूँ ।

तभी किसी की पदचाप की आवाज ने मेरा ध्यान खींचा। उधर मुड़कर देखा तो एक बड़ा ही भव्य और हृष्ट-पुष्ट शरीर वाला पुरुष आकर खड़ा हो गया। मैं उसे बड़े गौर से निहारने लगा। मुझे लग रहा था कि ऐसा भव्य पुरुष तो मैंने आज तक नहीं देखा है। बड़ी-बड़ी आंखें, विशाल बाजुएं, चौड़ी छाती, दिव्य ललाट, ऐसा लग रहा था कि उनके शरीर से कोई आभा निकल रही हो। ऐसे देखने में तो वे बड़े वीर योद्धा की भांति लग रहे थे, किन्तु चेहरे की सौम्य कांति से देवरूप लग रहे थे।

मैंने विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया और पूछा—महाशय, आप कौन हैं? और किस प्रयोजन से इधर आपका आना हुआ है? मैंने तो आपको यहां पहले कभी नहीं देखा है। कृपा करके अपना परिचय बतायें?

उन्होंने बड़ी ही मधुर आवाज में कहा—भाई, मैं हनुमान हूँ।

मैंने कहा—हनुमान! कौन हनुमान?

उन्होंने कहा—वही प्रसिद्ध राम-भक्त हनुमान, जिनकी चर्चा आप रामायण में सुने होंगे।

मैंने उन्हें और गौर से देखा और कहा—नहीं, नहीं!! आप हनुमान नहीं हो सकते। आप झूठ बोल रहे हैं। आप में हनुमान के कोई लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं। हमारे भारतवर्ष में तो हनुमान की लगभग सब जगह पूजा होती है। और यहां उनके इतने सारे मंदिर हैं कि उतने तो उनके प्रभु श्री राम जी के भी नहीं होंगे। और उनके मंदिरों में मंगलवार और शनिवार को बहुत ज्यादा

भीड़ होती है। उनमें तो हनुमान जी की एकदम बन्दर जैसी मूर्ति होती है।

मैंने रामायण भी पढ़ी है। उसमें पुराने से पुराने चित्र भी देखा है। उसमें भी हनुमान जी को पूंछ वाला वानर ही दिखाया गया है। और तो और रामायण में भी यह कथा आती है कि मां सीता की खोज के समय हनुमान को लंका में पकड़ लिया गया था। और उनको दण्ड देने के लिए उनकी पूंछ में आग लगा दी थी। सो उनकी पूंछ का होना तो प्रसिद्ध ही है। यहां तो हर राम-भक्त हनुमान को पूंछ वाला वानर ही मानता है। किन्तु आपकी पूंछ है ही नहीं, तो कैसे मान लें कि आप ही राम-भक्त हनुमान हैं। हमें तो लगता है कि आप कोई बहुरूपिया हैं जो किसी प्रकार छल करने आये हैं और अपने आपको हनुमान बता रहे हैं। वैसे आजकल कितने बहुरूपिये लोग हनुमान और शंकर आदि का रूप बनाकर घूमते भी रहते हैं।

उन्होंने कहा—नहीं भाई, सच में मैं वही राम-भक्त हनुमान हूँ। तुम मेरा विश्वास करो। जो तुम चित्र और मूर्ति की बात कर रहे हो यह हकीकत नहीं है। यह सब तो भक्तों की लीला है। वे तो जैसा चाहें वैसा अपने इष्ट और भगवान को बना देते हैं।

वे बहुत देर से खड़े-खड़े बात कर रहे थे, सो मैंने उनसे कहा आप खड़े हैं और मैं बैठा हूँ, यह ठीक नहीं है। कृपया बैठकर मेरा समाधान करें। मैंने अपनी साफ़ी बिछा दी और उसमें वे आराम से बैठ गये, फिर कहना शुरू किये, अच्छा भाई, उस समय के हमारे वानर कुल के महाराज वाली और सुग्रीव की चर्चा तो आपने सुनी ही है न? मैंने कहा—हां। फिर उन्होंने कहना शुरू किया—राजा वाली के वध के पश्चात सुग्रीव राजा बने और चार महिना वर्षा समाप्त होने के पश्चात मां सीता की खोज करने का प्रभु श्री राम को वचन दिये। श्री रामचन्द्र जी ने भी कहा—वर्षा में सीता की खोज संभव नहीं है। इस बीच आप अपना राज-काज व्यवस्थित

कर लें, फिर कार्तिक माह से देवी सीता की खोज में लगाना होगा। तब तक हम लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण पर्वत पर ही निवास करेंगे।

किन्तु जब वर्षा ऋतु बीत जाने के पश्चात भी महाराज सुग्रीव ने श्री रामचन्द्र की सुधि नहीं ली तब प्रभु श्री राम ने भैया लक्ष्मण को किष्किन्धा नगरी पठाया। आप तो पढ़े ही होंगे कि भैया लक्ष्मण कुछ उग्र स्वभाव के थे। वे हाथ में धनुष-बाण लेकर गुस्सा से पैर पटकते हुए किष्किन्धा नगरी आ पहुंचे। उनके क्रोध को देखकर लोग इधर-उधर भागने लगे। मुझे जब इसकी सूचना मिली तो मैं भी घबरा गया कि अब क्या होगा। जिस बात से डरते थे वही हो गया। जामवन्त जी ने मुझसे कहा—हनुमान, तुम जाओ और भैया लक्ष्मण को शांत करो। लेकिन इस परिस्थिति में मेरी भी लक्ष्मण के पास जाने की हिम्मत नहीं हुई। अन्ततः हमने विचार कर देवी तारा को उनके पास भेजा। क्योंकि मुझे पता था कि भैया लक्ष्मण एक मर्यादित पुरुष हैं। किसी स्त्री को सम्मुख पाकर नम्र हो जायेंगे। देवी तारा जब उनके सम्मुख गयी तो लक्ष्मण जी उसकी बातों को सुनकर शांत हो गये। देवी तारा ने जब लक्ष्मण को सभाकक्ष में लाकर आसन ग्रहण करने का निवेदन किया तो वहां और भी अनेक स्त्रियों को देखकर भैया लक्ष्मण सकुचा गये। वास्तव में भैया लक्ष्मण के क्रोध को शांत करने की मेरी यह नीति थी। भैया, अब बताओ, जहां की स्त्रियां बड़ी सुन्दर-सुन्दर थीं जैसा कि तुमने आदिकाव्य रामायण में भी पढ़ा होगा तो क्या पुरुष पूँछ वाले वानर रहें होंगे। महाराज वाली की पत्नी तारा सुन्दर थी। महाराज सुग्रीव की पत्नी रूमा भी बहुत सुन्दर थी और भी वहां सब स्त्रियां सुन्दर थीं तो पुरुष पूँछ वाले कैसे रहे होंगे। लोग इतना भी विचार नहीं करते हैं और हम लोगों को पूँछ वाला वानर बताकर अपमान करते हैं। उसी रामायण के अनुसार जब मैं राम-लक्ष्मण का परिचय जानने के लिए वन में उनके पास आया और उनसे बातें की तो मेरी बातों को सुनकर प्रभु श्री राम जी ने भैया लक्ष्मण से कहा था कि ये विप्र बड़े विद्वान जान पड़ते हैं क्योंकि जो विद्वान न होगा वह इस प्रकार

संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग नहीं कर सकता। तो बताओ भैया, क्या एक पूँछ वाला वानर विद्वान होता है और क्या वह संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग कर सकता है। भक्त लोग इतना भी नहीं सोच पाते हैं और हमारा पदे-पदे अपमान करते हैं। और तो और बड़े-बड़े पंडित, महात्मा, ऋषि, महर्षि भी इस प्रकार की बातें लिखते और मानते हैं। मुझे तो कभी-कभी इतना गुस्सा आता है इन लोगों पर कि कभी ये मिले तो दो-चार गदा लगाकर इनकी बुद्धि ठिकाने लगा दूं। पर क्या करूं, अब तो ये कितने लिखने वाले हैं भी नहीं।

मैं उनकी बातों को बड़े ध्यान से सुन रहा था। जब उन्होंने पंडित और महात्माओं के लिए गुस्सा किया तो मैं भी एकाएक डर गया। लेकिन फिर साहस करके कहा—भगवन, क्षमा करें। ये सामान्य लोगों में इतना विवेक कहां, लेकिन आप तो ज्ञान-गुण निधान हैं। आप उनपर गुस्सा न कीजिए। मुझे तो आपके मुख से सत्य जानना था इसलिए आपसे यह पूछ लिया।

हनुमान जी ने थोड़ा सहज होते हुए कहा—देखो भैया! इतना समझ लो कि हम लोग पूँछ वाले वानर नहीं हैं बल्कि वन में रहने वाले वानर गोत्रिय मनुष्य हैं। जामवन्त भी कोई रीछ या भालू नहीं थे। वे भी रीछ गोत्रिय मनुष्य थे। सम्पाति और जटायु भी कोई गिद्ध नहीं थे किन्तु गिद्ध गोत्रिय मनुष्य थे। पहले के लोग वानर, रीछ, गिद्ध, गरुण, नाग, पणि, मय, दानव, राक्षस आदि गोत्र के आधार पर जाने जाते थे। लोग जिस जानवर रीछ, नाग, भेड़िया, वराह आदि का चिन्ह रखते थे जिसे टाटम कहा जाता था वे उसी नाम से जाने जाते थे। वास्तव में वे सब मनुष्य ही थे।

जब हनुमान जी चुप हुए तो मैंने पुनः उनसे पूछा—भगवन! कहा जाता है कि जब आप छोटे थे और अपनी मां की गोद में बैठे थे, प्रातः का समय था तो आपने उगते हुए सूर्य को देखकर अपनी मां से पूछा कि मां! यह क्या है? तो मां ने कहा “बेर” है, तो आप तुरन्त उछल पड़े और सूर्य को निगल गये। हनुमान चालीसा में लिखा भी है—प्रातः समय रवि भक्ष कियो, तब तीनहु लोक भयो अंधियारो। क्या यह सच है?

हनुमान जी ने कहा—“भैया! यह सब महिमा की बात है। सूर्य यहां से पन्द्रह करोड़ कि.मी. दूर आकाश में धधकता आग का गोला है और पृथ्वी से लाखों गुना बड़ा है। उसको पृथ्वी पर रहने वाला मैं कैसे निगल सकता हूं। ये पंडित लोग भी न, बिना सिर-पैर की बातें लिखकर हमारे जीवन की प्रामाणिकता ही खराब कर देते हैं। और भी आपने बहुत सारी चमत्कारपूर्ण महिमा की बातें जो सुनी और पढ़ी हैं वे सब पंडितों और कवियों द्वारा गढ़ी गयी हैं। निश्चित ही हमने हैरतअंगेज और कठिन लगने वाले काम किये लेकिन वह बुद्धि-बल और सूझबूझ से संभव हो सका। आज के जमाने में भी तुम देख ही रहे हो कि मनुष्य अपने बुद्धिबल और विवेक-शक्ति से कैसे-कैसे एक से एक आविष्कार किये और कर रहे हैं। जिस पर एकाएक विश्वास करना कठिन होता है।

भैया, आज के युग का जो मोबाइल है कितना अद्भुत और चमत्कारी है। एक छोटा-सा मशीन जिससे घर बैठे सारी दुनिया की खबर जान सकते हैं। कहीं भी बैठे व्यक्ति से बात कर सकते हैं। कोई आपात स्थिति हुई तो कहीं भी 100, 102 या 108 नम्बर लगाकर तत्काल सहायता ले सकते हैं। भैया, हमारे जमाने में ऐसा कुछ था ही नहीं। यदि हमारे जमाने में मोबाइल होता तो क्या रावण मां सीता का हरण कर पाता! सीता फोन करके कह देती कि प्रभु! दुष्ट रावण यहां पर आया है, आप जल्दी आ जाओ। और वह दुष्ट वहीं मारा जाता और रामायण की कथा में लंकाकाण्ड भी न जुड़ता।

इस युग में तो एक से एक आविष्कार हुए हैं और हो रहे हैं। मोटर गाड़ी, ट्रेन, हवाई जहाज, जल जहाज आदि जिनसे सफर करने में कोई असुविधा नहीं होती है और महिनों के सफर को चंद्र घंटों में पूरा किया जा सकता है। एक से एक कल-कारखानों का विकास हुआ है जिससे आधुनिक साधनों का अम्बार लग गया है और मनुष्य पहले की अपेक्षा बहुत अधिक सुखी-सम्पन्न हो गया है। पहले और आज के जमाने में तो जमीन-आसमान का अंतर हो गया है। इतनी सारी सुख-सुविधा और विकास को देखकर अद्भुत लगता

है। इन सबके सामने तो हमारे समय का चमत्कार कुछ भी नहीं है। किन्तु खेद के साथ एक बात कहना पड़ रहा है कि इतना होते हुए भी आज के मनुष्य के मन में शांति और सुकून नहीं है। आज मनुष्य ने बहुत विकास किया पर मानसिक शांति का विकास नहीं किया और आज भी दुखी और अतृप्त बना हुआ है। और आगे बहुत अधिक विकास और आविष्कार की दुहाई देने वाला मानव सामान्य कोरोना वायरस के चपेट में आकर हतप्रभ हो गया है। जिससे पूरी दुनिया में त्राहि-त्राहि मची हुई है। इतना अधिक आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का विकास करने के बावजूद आज मनुष्य कोरोना के आगे कितना असहाय-सा हो गया है।

यह आज जो मनुष्य की दुर्गति हुई है उसमें और कोई नहीं मनुष्य स्वयं जिम्मेदार है। वह प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन कर रहा है। आधुनिक कल-कारखानों के नाम पर प्रकृति के साथ छेड़छाड़ कर रहा है। जल प्रदूषण, थल प्रदूषण, वायु प्रदूषण बहुत ज्यादा बढ़ रहा है। प्रकृति की हरियाली समाप्त हो रही है। एक प्रकार से मनुष्य प्रकृति के अन्दर असंतुलन की स्थिति पैदा कर रहा है और दूसरी तरफ जो नहीं खाना-पीना चाहिए उन चीजों को खा-पी रहा है। तो इसका दुष्परिणाम भी भोगने के लिए तैयार रहना चाहिए। वैसे यह सब देखकर तो मुझे लगता है कि इससे अच्छा तो वह कम विकसित वाला युग था। सहज रूप से लोग कमाते-खाते थे और प्रकृति की गोद में आनंदित रहते थे। हां, कुछ दुष्ट स्वभाव के लोग हमेशा कुछ-न-कुछ उथल-पुथल करने वाले हुए हैं। ऐसे लोगों की वजह से ही परेशानी होती रही है और इसीलिए हम जैसे लोगों को भी हथियार उठाने की आवश्यकता पड़ती रही है।”

तभी किसी ने मुझे जोर से आवाज दी और मेरी नींद खुल गयी। मुझे लगा अरे! मैं तो स्वप्न देख रहा था। मुझे हंसी आ गयी और संतोष लगा कि स्वप्न में ही सही हनुमान जी से बहुत कुछ जानने-समझने को मिला।

□

व्यवहार वीथी

शीतल शब्द उचारिये

यह सब जानते हैं कि इस संसार में मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जिसके पास वाणी की शक्ति है। वाणी मनुष्य के लिए प्रकृति का अनुपम वरदान है। यदि मनुष्य के पास वाणी नहीं होती तो वह आज किस स्थिति में जी रहा होता इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज मनुष्य भौतिक विकास और वैज्ञानिक तरक्की की जिस ऊंचाई तक पहुंचा है उसमें मनुष्य की बौद्धिक, मानसिक एवं शारीरिक योग्यता-क्षमता का जितना योगदान है उतना ही योगदान वाणी का भी है।

पढ़ना-पढ़ाना, ज्ञान का आदान-प्रदान, विचारों की अभिव्यक्ति वाणी के द्वारा ही होते हैं। यदि मनुष्य के पास वाणी न होती तो न स्कूल-कालेज होते न पढ़ना-पढ़ाना होता और न उसका बौद्धिक-मानसिक विकास ही होता। बौद्धिक-मानसिक विकास के अभाव में आज के भौतिक एवं विज्ञान विकास की बात ही कहां होती। इन सबसे यह सहज ही समझा जा सकता है कि मनुष्य मात्र के बौद्धिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए वाणी का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है।

यहां यह भी ध्यान रखना होगा कि सदुपयोग करने से वाणी यदि वरदान सिद्ध होती है तो दुरुपयोग करने से अभिशाप भी बन जाती है। वाणी दोधारी तलवार है। वाणी से समस्याएं सुलझती हैं तो बोलने की कला न जानने से समस्याएं उलझती भी हैं। सदुपयोग से बिगड़े काम बन जाते हैं तो दुरुपयोग से बने-बनाये काम बिगड़ जाते हैं। दोस्त दुश्मन बन जाते हैं तो दुश्मन दोस्त बन जाते हैं। रुपये को खर्च करते समय जितनी सावधानी की आवश्यकता होती है उससे अधिक सावधानी वाणी बोलते समय रखने की आवश्यकता है। असावधानी से खर्च किये गये रुपये परिश्रम-पुरुषार्थ करके पुनः प्राप्त किये जा सकते हैं, परन्तु असावधानी-पूर्वक बोली गयी वाणी लाख प्रयत्न करके वापस नहीं

लायी जा सकती। अतः बहुत सावधानी से सोच-विचार कर वाणी बोलने की आवश्यकता है, क्योंकि वाणी में अमृत और विष दोनों हैं।

यदि उचित समय पर उचित ढंग से उचित बात कही जाये तो वाणी टुटे हुए दिलों को जोड़ देती है, किन्तु अनुचित समय पर अनुचित बात कही जाये या उचित बात भी अनुचित ढंग से कही जाये तो वाणी जुड़े हुए दिलों को तोड़ देती है। किन्तु यह ध्यान रहे कि टुटी हुई चीज या दीवार को जोड़ना जितना सरल है टुटे हुए दिलों को जोड़ना उतना ही कठिन है। इसलिए ऐसी बात कभी न बोलें कि जुड़े हुए दिल टुट जायें। वाणी दोस्त भी बनाती है और दुश्मन भी, मनुष्य के दिल में घाव भी बनाती है और घाव पर मलहम भी लगाती है। इसलिए हर आदमी को सारा अहंकार छोड़कर ऐसी बात बोलना चाहिए कि बोलते समय उसका अपना मन तो शीतल-शांत रहे ही उस बात को सुनकर सुनने वाले को भी शीतलता-शांति का अनुभव हो। इस संदर्भ में सद्गुरु कबीर की निम्न साखियां अत्यंत सारगर्भित एवं प्रेरणाप्रद हैं—

शीतल शब्द उचारिये, अहं आनिये नाहिं।
तेरा प्रीतम तुझहि में, दुश्मन भी तुझ माहिं ॥
शब्द संभारे बोलिये, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द औषध करे, एक शब्द करे घाव ॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय ॥

वाणी का प्रयोग किये बिना व्यावहारिक जीवन में कितनी कठिनाई आ सकती है बड़ी सरलता से यह बात समझी जा सकती है। इसलिए बोलना तो पड़ेगा। बिना बोले व्यवहार चल नहीं सकता, परन्तु बोलते समय कब, कितना, किससे, क्या और कैसे बोलना है इस बात पर भी ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। इन बिन्दुओं पर ध्यान न रखने से ऊंची से ऊंची और बढ़िया से बढ़िया बात का भी मूल्य और महत्त्व या तो कम हो जाता है या घट जाता है। कभी ऐसा समय होता है कि उसी बात को बहुत विस्तार से कहने की आवश्यकता होती है और कभी बहुत संक्षेप में। हर समय एक ही ढंग से बात कहने से काम बिगड़ जाता है।

जहां तक हो सके दूसरों के संबंध में बात करने से बचना चाहिए। यदि दूसरों के संबंध में बात करना आवश्यक ही हो तो उसकी अच्छाइयों की ही चर्चा होनी चाहिए, बुराइयों की नहीं। यदि बुराइयों की चर्चा करनी भी हो तो आलोचना या निंदा की दृष्टि और भावना रखकर नहीं, अपितु सुधार और सावधानी की दृष्टि और भावना रखकर। जितना संभव हो दूसरों की आलोचना एवं निंदा से बचने का प्रयास होना चाहिए, क्योंकि इससे सिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं होता और किसी का भी नहीं होता। निंदा-आलोचना से अपना मन दूषित तो होता ही है, सच तो यह है कि अपना मन दूषित होने पर ही दूसरों की निंदा-आलोचना की जाती है, सुनने वाले का भी मन दूषित होता है। उसके मन में जिसकी निंदा-आलोचना की जा रही है उसके प्रति गलत भावना-विचार पैदा होते हैं। इसलिए आलोचक नहीं अपितु प्रशंसक बनें। आलोचना की बजाय प्रशंसा करने से काम कैसे बन जाते हैं और सुनने वाले का मन भी कैसे खुश हो जाता है, निम्न उदाहरण से समझा जा सकता है—

एक ट्रक निर्माता कंपनी का एक एजेंट अपनी कंपनी की ट्रकों का सौदा करने के लिए एक ट्रक विक्रेता व्यापारी के पास गया। उस एजेंट को देखते ही व्यापारी ने कहा—मैं तुम्हारी कंपनी की एक भी ट्रक नहीं खरीद सकता, क्योंकि मैंने कल ही अमुक कंपनी से एक सौ ट्रकें खरीदने का सौदा कर लिया है। व्यापारी की बात सुनकर एजेंट ने कहा—बहुत बढ़िया सर! आपने जिस कंपनी से ट्रकें खरीदने का सौदा किया है वह एक प्रामाणिक कंपनी है और उसकी बनायी ट्रकें बहुत मजबूत एवं टिकाऊ होती हैं। आपने एक बहुत बढ़िया सौदा किया है और उससे आपको अच्छा लाभ मिलेगा। निवेदन यही है कि कभी हमारी कंपनी को भी सेवा करने का अवसर दें। आपको हमसे कोई शिकायत नहीं मिलेगी। एजेंट की इस पर-गुण प्रशंसा एवं विनम्रतापूर्ण बातों से व्यापारी इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसी समय उस एजेंट की कंपनी से भी एक सौ ट्रकें खरीदने का सौदा कर लिया।

कभी किसी की आलोचना करने का अवसर आये भी और आलोचना करना आवश्यक हो तो सही शब्दों का प्रयोग करें, वह भी मधुरतापूर्वक। कभी किसी के लिए गलत शब्दों का प्रयोग न करें। सदैव यह ध्यान रखें कि किसी के पास कहने को जब सही शब्द नहीं होते तभी वह गलत शब्दों का और अपशब्दों का प्रयोग करता है। इसलिए कम से कम शब्दों के मामले में इतने गरीब और कंगाल कभी न बनें कि किसी को देने के लिए, किसी से बात करने के लिए आपके पास सही शब्द न रह जायें। याद रखें दुनिया में रुपये-पैसे, जमीन-जायदाद का धनी हर व्यक्ति नहीं बन सकता, परन्तु मधुर, मीठे और सही शब्दों का धनी हर व्यक्ति बन सकता है। दुनिया में इतना गरीब कोई नहीं है कि वह किसी को दो मीठे शब्द, मीठी-मधुर बात भी न दे सके।

आधुनिक रहन-सहन सुविधापूर्ण जीवन शैली, जिसमें शारीरिक श्रम की मात्रा घटती जा रही है, और खान-पान की अनियमितता होने के कारण आज लोगों के ब्लड में सुगर की मात्रा बढ़ती जा रही है, जिसके कारण लोग मधुमेह (डायबिटीज) के रोगी बनते जा रहे हैं, परन्तु दुर्भाग्य यह है कि एक तरफ तो ब्लड में सुगर की मात्रा बढ़ती जा रही है और दूसरी तरफ जबान (वाणी) में सुगर की मात्रा घटती जा रही है और कडुवाहट बढ़ती जा रही है। इससे लोग न तो तन से स्वस्थ रह पा रहे हैं और न मन से। मीठी चीज (मिठाई-पकवान) हर किसी को पसंद नहीं होती, किन्तु मीठी वाणी, मीठे शब्द तो हर किसी को पसंद होते हैं। मीठी चीज-मिठाई भले किसी को न खिला पायें, मीठी बोल, मीठे शब्द तो हर किसी को दे सकते हैं। मिठाई खरीदने में तो पैसा लगेगा किन्तु मीठी बात, मीठे शब्द बोलने में तो कुछ भी खर्च होने वाला नहीं है।

एक बात का और ध्यान रखें कि दुनिया की हर चीज की कीमत आंकी जा सकती है किन्तु मीठी वाणी, मीठे शब्दों की कीमत नहीं आंकी जा सकती। दुनिया में हर चीज खरीदी जा सकती है किन्तु मीठी वाणी नहीं खरीदी जा सकती। मीठी वाणी ऐसा रत्न है जो दुनिया

में हर किसी पास है और हर कोई इसे बिना मूल्य लिये दे सकता है। इसमें देने वाले का कुछ घटता नहीं है, परन्तु पाने वाला, सुनने वाला इसे पाकर मालामाल-प्रसन्नता से आह्लादित हो जाता है। सद्गुरु कबीर तो कहते हैं कि दुनिया में शब्द-वाणी के बराबर कोई धन नहीं है। यदि मनुष्य बोलने की कला जाने, वह हृदय के तराजू पर तौलकर बात बोले तो एक-एक बात ऐसी होती है कि जिसकी कोई कीमत नहीं चुकाई जा सकती। हीरा तो दाम चुकाकर खरीदा जा सकता है। शब्दों का तो कोई मूल्य ही नहीं होता, वह अनमोल है। मूल वाणी इस प्रकार है—

शब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जाने बोल।
हीरा तो दामों मिले, शब्द के मोल न तोल ॥
बोल तो अमोल है, जो कोई बोले जान।
हिये तराजू तौलिके, तब मुख बाहर आन ॥

समयानुकूल उचित और मीठी-हितकर बात तो बोलना ही है, किसी से बात करते समय उसकी बात को बीच में काटकर अपनी बात को ऊपर रखने की और उसकी बात को गलत तथा अपनी बात को सही सिद्ध करने की चेष्टा कभी न करें। ऐसा करने से सामने वाला रुष्ट हो जायेगा और उसके मन में आपके लिए एक विरोध का भाव बन जायेगा, फिर वह आपकी उचित बात को भी सुनना नहीं चाहेगा। जिस प्रकार हर आदमी को अपनी संतान ज्यादा प्यारी और सुंदर लगती है उसी प्रकार हर आदमी को अपनी बात ज्यादा प्यारी, सही और सच लगती है, फिर वह अपनी बात को काटना और उसे गलत सिद्ध करना कैसे पसंद और सहन करेगा। इसलिए किसी की बात को काटने की बजाय उसे अपनी पूरी बात कह लेने दीजिये, तब अपनी बात कहें तो वह आपकी बातों को सुनने-समझने को तैयार हो जायेगा।

प्रायः लोगों की आदत होती है कि उन्हें दूसरों की बातें सुनने की अपेक्षा अपनी बातें सुनाना ज्यादा पसंद होता है। हर आदमी को लगता है कि संबंधित विषय में सामने वाले की अपेक्षा मैं ज्यादा जानता हूं। इसलिए

वह सुनना कम चाहता है और सुनाना ज्यादा। इसलिए सुनाने वाले ज्यादा हैं सुनने वाले कम। जबकि कई समस्याएं ऐसी होती हैं जो सुन लेने मात्र से सुलझ जाती हैं। सुन लेने से सुनाने वाले का मन प्रसन्न हो जाता है। इसलिए सुनें ज्यादा, सुनायें कम। हां, जब लगे कि यहां बोलना आवश्यक है तब अपनी बात अवश्य कहें, क्योंकि वहां चुप रहने से काम बिगड़ सकता है।

एक बात और, अच्छी बातों को, विचारों को अवश्य सुनें और पढ़ें। अच्छे विचारों को सुनना-पढ़ना बहुत ही अच्छा है, किन्तु उससे ज्यादा अच्छा और आवश्यक है अच्छी बातें कहना और अच्छा काम करना। लोग आपका मूल्यांकन इस बात से नहीं करेंगे कि आप क्या पढ़ते हैं किन्तु लोग आपका मूल्यांकन इस बात से करेंगे कि आप क्या कहते-बोलते हैं और क्या करते हैं। यहां यह नहीं कहा जा रहा है कि आप अच्छे विचार, अच्छी बातें न पढ़ें, उन्हें अवश्य पढ़ें किन्तु पढ़कर ही न रह जायें, उन्हें कहें भी और करें भी।

ऊपर कहा गया है कि मीठी चीजें किसी-किसी को भले पसंद न हो, किन्तु मीठी वाणी, मधुर-प्रिय बात हर किसी को प्रिय होती है। इसलिए मीठी-मधुर कोमल वाणी अवश्य बोलें परन्तु इतना ध्यान अवश्य रखें कि उस मीठी-मधुर वाणी के पीछे कोई छल-कपट-कुटिलता न हो। छल और कपट पूर्ण मीठी-मधुर वाणी जहर से भी ज्यादा घातक होती है। अतः छल-कपट पूर्ण मीठी-मधुर बात कह-बोल कर न तो किसी को धोखा दें और न घर-परिवार-समाज की एकता-संगठन को तोड़ने, आपस में फूट डालने का अपराध करें और साथ ही किसी की मधुर-मीठी बात सुनकर स्वयं भी धोखा न खायें, न ठगायें। जब भी बोलें सच बोलें, प्रिय बोलें और हितकर बोलें। यदि प्रिय-हितकर न बोल सकें तो चुप-मौन रहें। किसी ने कितना सुंदर कहा है—

यदि सत्य मधुर न बोल सको तो झूठ कठिन भी मत बोलो।
फिर मौन रहो सबसे अच्छा कम से कम विष तो मत घोलो ॥
बोलो तो पहले तुम तौलो फिर मुख ताला खोला करना।
यदि अमृत न पिलाने को घर में तो जहर पिलाते भी डरना ॥

वाणी के रूप में हमें प्रकृति का जो अनुपम वरदान मिला हुआ है इसका दुरुपयोग कर अपने तथा दूसरों के जीवन में जहर न घोलें। किन्तु इसका सदुपयोग कर मिष्ट, मधुर और हितकर वाणी रूपी अमृत पीते और पिलाते रहें। भौतिक धन के धनी नहीं बन सकें तो कोई बात नहीं, मिष्ट, मधुर और हितकर वाणी के धनी अवश्य बनें और इसे दूसरों को देने में कभी कंजूसी न करें, अपितु उदारतापूर्वक इसका अधिक से अधिक

वितरण करते रहें। मीठी, मधुर और हितकर बात बोलने से आपका मन निर्भय और आश्वस्त तो रहेगा ही सुनने वाले का मन भी आह्लादित-प्रसन्न रहेगा। पैसा देकर आप किसी का दिल नहीं जीत सकते, परन्तु मीठी-प्रिय वाणी बोलकर आप दूसरों का दिल अवश्य जीत सकते हैं और उसके हृदय में अपने लिए जगह बना सकते हैं।

—धर्मेन्द्र दास

कुदरत का इंसोफ

लेखिका—साध्वी समता

जीवन का खेल भी निराला है, लेकिन मनुष्य जीवन के खेल को समझ नहीं पाता है क्योंकि परिस्थितियाँ एक जैसी नहीं रहती हैं। चाहे आर्थिक परिस्थिति हो, चाहे सामाजिक या चाहे पारिवारिक परिस्थिति, परिवर्तन होता ही रहता है। परिवर्तन प्रकृति एवं संसार का स्वभाव है। परिवर्तनशील परिस्थितियों में जो अपने मन को मजबूत बना लेता है, विचलित नहीं होता है वही व्यक्ति तनावमुक्त जीवन जीता है और जो प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाता है उसका जीवन अनेक समस्याओं एवं तनावों से ग्रसित हो जाता है। ऐसी स्थिति में मन विचलित हो जाता है। जिसके कारण मनुष्य नीति-अनीति, सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म को ठीक ढंग से समझ नहीं पाता है और सुपथ को छोड़कर कुपथ पर चलने लगता है। परिणाम यह होता है कि गलत रास्ते पर चलने से कर्म संस्कार बिगड़ते चले जाते हैं। विवेक न होने के कारण मनुष्य का जीवन दिशाहीन हो जाता है और जीवन में हिंसा-हत्या, चोरी, बेईमानी, विश्वासघात, दुर्व्यसन इस तरह घर कर जाते हैं कि मनुष्य इन मानसिक विकारों से निकल नहीं पाता है। गलत कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। गलत कर्म करने के परिणाम में कानूनन सजा भी होती है। लेकिन कहीं-

कहीं कानून की नजर से बच भी जाते हैं परन्तु सही इंसोफ कुदरत करती है। उसके इंसोफ से कोई बच नहीं सकता है। वह कुदरत है प्रकृति।

कुदरत का नाम सुनते ही लोगों की भावना किसी भगवान या देवी-देवता से जुड़ जाती है क्योंकि मनुष्य इस अंध मान्यता में अनादि काल से जकड़ा हुए है। लोगों के अंदर यही धारणा है कि कोई अद्भुत शक्ति या देवी-देवता ही सब कुछ कर रहा है। हमारे कर्मों का विधाता एवं न्याय-अन्याय करने वाला भगवान ही है। ऐसे लोगों को इंसानी ताकत का अंदाजा नहीं है कि इंसान अपनी इंसानियत के बलबूते कैसे ऊपर उठता है और अपनी शैतानियत के कारण कैसे नीचे गिर जाता है! लोगों के साथ सही इंसोफ करने वाला कोई अद्भुत शक्ति या भगवान नहीं है। बल्कि इंसोफ करने वाला इंसान ही है। वर्तमान में इंसान की अदालत में न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म की कोई पहचान नहीं है। इसका कारण है इंसान अपना स्वाभिमान, अपनी जमीर तक बेच चुका है।

लेकिन सच्चा मनुष्य हार नहीं मानता है। वह अपने अंदर उम्मीद के दीपक को बुझने नहीं देता है। उसे पूरा विश्वास होता है कि कहीं न कहीं इंसोफ जरूर मिलेगा। और वह अदालत है कुदरत की अदालत

अर्थात् प्रकृति की अदालत या कहिये कि प्रकृति का विधान। लोग सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म की लड़ाई सदियों से लड़ते आ रहे हैं, लेकिन सही इंसाफ कुदरत की अदालत में होता है। इंसान का अपनी इंसानियत से गिर जाने के कारण असत्य और अधर्म को ही इंसाफ मिलता है। सरेआम झूठ को ही सच साबित कर देता है। लेकिन प्रकृति हमेशा धर्म एवं सत्य के साथ न्याय करती है। प्रकृति द्वारा कभी अन्याय होता ही नहीं है।

जो लोग प्रकृति के अनुसार जीवन व्यतीत नहीं करते हैं ऐसे लोगों का जीवन भय एवं तनाव से भरा रहता है। मनुष्यों का प्रकृति के विरुद्ध जीवन जीने का जीता जागता उदाहरण है गलत खान-पान। लोगों का खान-पान शुद्ध नहीं है तो आचार-विचार कैसे शुद्ध होगा और आचार-विचार शुद्ध नहीं है तो जीवन कैसे शुद्ध होगा? जीवन में तमाम विसंगतियों का परिणाम है गलत खान-पान। गलत खान-पान आदमी को रुग्ण, बीमार बना देता है। शराब-मांस का सेवन करने वाला व्यक्ति कहीं भी कभी भी साफ-सुथरा जीवन नहीं जी सकता है। शराब-पान और मांस-भक्षण व्यक्ति को हिंसक और क्रूर बना देता है। वह दूसरों के साथ अकसर निर्दयता एवं कठोरता का व्यवहार करता है।

जहां व्यवहार में कठोरता और निर्दयता हो, वहां व्यक्तित्व में गिरावट आना स्वाभाविक है। शराब एवं मांस का सेवन करने वाला व्यक्ति तामसी अर्थात् क्रोधी स्वभाव वाला होता है। क्रोध ऐसी धधकती आग है जिसमें व्यक्ति का विवेक-विचार सद्गुण-सदाचार सब जलकर राख हो जाते हैं। जिस जीवन में विवेक-विचार सद्गुण-सदाचार ही नहीं है तो वह जीवन जीवन नहीं कहलायेगा। ऐसा जीवन नारकीय जीवन है।

अधिकांश लोग नारकीय जीवन ही जी रहे हैं। प्रकृति के विरुद्ध चलना अपनी मानवता को खोना है। प्रकृति अपना सब कुछ दूसरों को समर्पित करती है। प्रकृति जड़-बेजान होकर भी औरों के काम आती है।

लेकिन मनुष्य सजीव एवं विवेकशील प्राणी होकर भी अपनों के काम नहीं आता है। यह मानव जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है। इसलिए मनुष्य के लिए 'स्वार्थी' और 'मतलबी' शब्द का प्रयोग किया जाता है। कहते हैं स्वार्थी और मतलबी लोगों की दुनिया है। लेकिन आज तक प्रकृति को 'मतलबी' और 'स्वार्थी' नहीं कहा गया है और न ही आगे कोई कह सकता है।

मनुष्य जीवन अनमोल है। हम इसी जीवन में ही असली आनंद का अनुभव कर सकते हैं। बशर्ते हमारी सोच सकारात्मक एवं उच्च हो। नकारात्मक और निम्न सोच वाला व्यक्ति कभी ऊपर उठ नहीं सकता है। सोच के आधार पर ही जीवन का निर्माण होता है। जीवन में सकारात्मक एवं उच्च सोच रखने का अर्थ है खुद के लिए अच्छा सोचना तथा औरों के लिए भी अच्छी सोच रखना तथा स्वयं ईमानदारीपूर्वक जीवन जीना। ईमान-दारीपूर्वक जीवन जीने का अर्थ है मन में किसी के प्रति ईर्ष्या-द्वेष, घृणा-नफरत की भावना न हो। ईर्ष्या-द्वेष, घृणा-नफरत की भावना ऐसा घुन है जो जीवन को खोखला कर देता है और परिणाम में केवल क्लेश, पीड़ा, अशांति और पश्चाताप ही हाथ आता है। अतएव हमारी जीवन शैली "सादा जीवन और उच्च विचार" पर आधारित होना चाहिए।

जीवन की प्रत्येक गतिविधि सादगीपूर्ण है, जीवन-यापन प्राकृतिक ढंग से है तो प्रकृति की ओर से हमेशा न्याय ही मिलेगा। प्राकृतिक ढंग से जीवन जीने का अर्थ है कि जीवन में किसी भी प्रकार का सजावटीपन एवं दिखावटीपन न हो। जीवन पूरी तरह से खुली किताब की तरह होना चाहिए, जिसे हर कोई पढ़ सके। अर्थात् दूसरों के लिए प्रेरणास्रोत बन सके। जीवन बेदाग, निर्मल और पवित्र होना चाहिए। जब हम किसी के साथ अन्याय नहीं करेंगे तो हमारे साथ भी कभी अन्याय नहीं होगा। हमारा जीवन पूर्ण निर्भयता एवं निश्चिंतता से परिपूर्ण होगा। फिर प्रकृति की ओर से हमारे जीवन में आनंद की वर्षा होगी। यही है कुदरत का इंसाफ।

□

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

संपन्नता चाहे जितनी हो, मनुष्य संतोष के बिना सुखी नहीं रह सकता। रोग, भयंकर रोग, दुर्घटना, प्रिय-वियोग, घाटा, प्रेमियों का उदासीन तथा विरोधी हो जाना लगे रहते हैं। ये सारी बातें धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित सबके जीवन में आती हैं। सब स्थितियों में संतोष ही सुख दे सकता है। परम प्रसन्नता, आत्यंतिक सुख, अखंड आनंद अंतर्मुखता ही दे सकती है। संसार को भूलकर आत्मलीन हो जाने पर ही भवसागर से पार पाया जा सकता है। शरीर से लेकर पूरा संसार सदा के लिए छूटना और भूलना ही है। देह में रहते-रहते इनसे उपरत होकर आत्मलीनता में डूब जाना ही समझदारी है।

मैं देह, प्राण, मन, बुद्धि, अहंकारादि जड़ दृश्य से सर्वथा पृथक, असंग, अद्वैत, अकेला, केवल तथा निराधार हूँ और अपने आप में पूर्ण तृप्त स्वरूप हूँ, यह बोध हो जाने के बाद केवल एक काम रह जाता है, वह है मन को पूर्ण निर्विषय एवं शुद्ध कर अंतर्मुख होने का अभ्यास निरंतर करते रहना। मन का पूर्ण निर्मल रहना जीवन की सफलता है। इसी से निर्विकल्प समाधि लगती है। विषय अनात्म, विकारी, अनित्य, दुखपूर्ण और विनश्वर हैं। मेरा संबंध जहां तक होता है वह क्षणिक है। असंबंध ही स्थिर है। इसलिए असंबंध को ही साधना चाहिए। अपना मन कहीं अनात्म वस्तु में न लगाना, आत्मचिंतन अथवा निर्विकल्प समाधि साधना, यही बोधवान का निरंतर का काम है।

दृश्य का मोह विवेकवान की दृष्टि में कांटे हैं; इसलिए वे इसकी संभावना मात्र को भयंकर दुखदायी

समझते हैं। सारा मोह मिथ्या वस्तुओं में होता है। अंततः शून्य हो जाने वाले प्राणियों के शरीर, पदार्थ और परिस्थितियों में ही तो मोह होता है। जो शून्य हो जाने वाला है, उसमें मोह करना हद दर्जे की मूर्खता है। मोह मूर्खता ही है। इस मूर्खता को सर्वथा छोड़ देने वाला सदैव मुक्त ही है। मुक्ति का लाभ न समझने से ही मोह होता है। मुक्तिलाभ समझ जाने पर और मुक्तिदशा में रहने लगने पर यदि कहीं बीच-बीच में मोह का भाव आता है, तो साधक को वह तीर के समान चुभता है और उसे वह तत्काल निकाल फेंकता है। निरंतर मोह-रहित रहना पूर्ण मुक्तिदशा है।

जीव के साथ कुछ स्थिर होकर रहने वाला नहीं है। इसलिए जीव को चाहिए कि वह किसी भी प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति और अपनी मानी हुई देह में भी मोह न करे। जो साथ रहने वाला नहीं, उसमें मोह कैसा? मोह तो कहीं जड़-दृश्य में होगा, वह दुखों का कारण होगा। लोग सर्प, बिच्छू और विष का स्पर्श नहीं करते, क्योंकि उन्हें वे घातक समझते हैं, इसी तरह मोह को घातक समझकर उसका स्पर्श नहीं करना चाहिए। सर्प, बिच्छू और विष शरीर को क्लेश देता अथवा उसे मारता है, मोह तो आत्मा को भटकाता है। एक ने पूछा, सब कुछ छूटने वाला और नश्वर जानते हुए, उनका मोह क्यों नहीं मिटता? मैंने कहा, तत्पर होकर उसे मिटाया नहीं जाता। जो मिटाता है उसका मिट जाता है।

एक सेठ, जिनके कई लड़के हैं, उन्होंने बुढ़ापा में आत्महत्या कर ली। वे अपने लड़कों को धन के लिए कलह करते देखकर उनके इस आपसी दुर्व्यवहार से ऊब गये और अपने को सम्हाल न सके। यह है संतान-सुख और संपत्ति-सुख। ऐसी घृणित स्थिति सब की नहीं होती है। परंतु अपनी बनायी सृष्टि से धक्का सबको लगता है। विवेक जितना बलवान होता है उतना मनुष्य

सहन कर लेता है। जिनका विवेक दुर्बल है, वह खो जाता है; और जिनका विवेक पूर्ण बलवान है, वह दुखहीन होकर जीता है। इस संसार में असली कमाई है, मन की पवित्रता की। वही आज और आगे सुख-शांति का शंबल बनता है। लौकिक धन की थोड़ी आवश्यकता है, जो प्रारब्ध और परिश्रम के अनुसार सबको मिलता रहता है।

* * *

मेरा कोई शत्रु नहीं है और कोई मित्र नहीं है। सारा संसार मित्र है। अपने-अपने स्वभाव और मान्यतानुसार सब मनुष्य बात-व्यवहार करते हैं। उसमें हमें प्रभावित न होकर अपनी दशा में रहना चाहिए। हम अभी रात में छह घंटे एक नींद में सोते रहे, उस समय हम परमानंद में थे, क्योंकि वहां मन और इंद्रियों का व्यवहार शांत था। जाग्रत अवस्था में मन और इंद्रियों का व्यवहार शुरू होता है। यदि हम सारे संबंध को स्वप्नवत समझते हैं, और अंत में सदा के लिए विस्मृति के गर्त में डूब जाने वाला समझते हैं, तो जाग्रत में भी परम शांति में रहते हैं। बोध हो जाने का तात्पर्य ही है, मोह-शोक से सर्वथा मुक्त हो जाना। यही जीवन का फल है। इस मृत संसार में क्या मोह-शोक!

* * *

मेरा शाश्वत वैभव मेरी असंगता, अकेलापन एवं अद्वितीयता है। माया की वस्तु रहने वाली नहीं है। सारी निर्मित वस्तुएं माया है। इसलिए इनसे मन हटा कर अपने असंग चेतन स्वरूप में ही निरंतर लगाना चाहिए। सब समय आत्म-चिंतन स्थिर रखने के लिए संगदोष का त्याग करना चाहिए। दुनियादारी लोगों में अपना समय अधिक न व्यतीत करे। विवेकी संतों की संगत में रहे या एकाकी आत्मचिंतन में। सद्गुरु की यह वाणी मार्मिक है—

*दुनिया केरी दोस्ती, पड़त भजन में भंग।
एकाएकी राम सो, या संतन का संग ॥*

संतों की संगत का भी फल है आत्माराम में निरंतर लगे रहने के लिए बल प्राप्त करना। मुख्य काम है निरंतर स्वरूपलीनता। यह काम जिनका पूरा हो गया, वह धन्य हो गया।

* * *

भीतर और बाहर मौन के समान न कोई सुख है और न उपलब्धि। भीतर का मौन है वासना-हीन मन एवं निर्विकल्प दशा और बाहर का मौन है चुप रहना। जीवन का सारा काम हो चुका है और बाहर का सेवा-कार्य भी हो चुका है। यह मिट्टी का पिंड शरीर धरती पर चल रहा है। यह आज-कल में कहीं गिरकर समाप्त हो जायेगा। इससे अब कुछ करना शेष नहीं है। जब तक यह चल रहा है, तब तक सहज क्रिया चल रही है। मन से सब कुछ का त्याग हो जाने के बाद कोई दुख नहीं रहता। सर्वत्याग हुए बिना किसी का दुख दूर नहीं हो सकता। त्यागना तो सबको है। स्ववश होकर त्यागना मोक्ष देता है।

* * *

संसार कैसा परिवर्तनशील है। अपने को भीड़ से बचा-बचा कर अकेले में आत्मशोधन करता रहे। जीव अकेला है। अपने अकेलेपन का अधिकतम अनुभव होना चाहिए। यहां तक कि हर समय अकेलेपन का बोध बना रहना चाहिए, तभी जीवन्मुक्ति फलती है।

मन-इंद्रियों को जीत कर पूर्ण वासना विजयी हुए बिना कोई परमानंद की स्थिति में नहीं जी सकता। परमसुख है वासनाहीन मौन की दशा। इसके पहले मन, वाणी तथा इंद्रियों पर संयम।

* * *

हम मन से दृश्यों के विषय में सोचते हैं, दृश्यों के विषय में वार्ता करते हैं और दृश्यों के विषय में व्यवहार करते हैं। यह सब संसारी धंधा है। जब मन, वाणी और इंद्रियों की गतिविधि शांत हो जाती है, तब स्वयं चेतन सत्ता शेष रह जाती है; यही अध्यात्म की उच्चतम

अवस्था है। इसी दशा में ठहरना साधक की बुद्धिमानी है। अंततः न मन रहेगा, न वाणी और न इंद्रियां। तब केवल स्व चेतन सत्ता ही रहेगी। यही अनंतकाल की स्थिति है। अतएव इसी स्थिति में निरंतर रमना जीवन की सार्थकता है। अहो, मेरे साथ कुछ रहने वाला नहीं है। फिर इन मिलने वाले प्राणी, पदार्थों की गरमी क्यों अपनायी जाये। संबंध की अहंता-ममता जनित गरमी ही भवबंधन है। इसे पूर्ण त्यागो।

* * *

अन्तिम स्थिति प्राप्ति के लिए अशुभ तो छुटा ही रहता है, शुभ का भी उतना ही संबंध रखना है जितने से निर्विकल्प समाधि में ठहरा जा सके। यह देह में निवास आज-कल में समाप्त हो जाना है, फिर सदा के लिए असंग रहना है। इस शाश्वत असंग स्थिति के लिए आज ही सब तरफ से उपराम हो जाना चाहिए। किसी के जीवन में काम समाप्त नहीं होता है। उसे समाप्त करने पर वह समाप्त होता है। सारे काम का तात्पर्य है सदैव के लिए सभी दुखों से सर्वथा निवृत्ति और वह निर्विकल्प समाधि की स्थिरता से ही संभव है। दृश्य-अभाव में जीना अंतिम साधना और स्थिति है और यही निर्विकल्प स्थिति है। यह अंतिम दशा सब कुछ का मोह छोड़ने पर आती है।

* * *

यह सब क्षणिक है। शरीर ही नहीं रहेगा। हमारा ऐश्वर्य लौकिक, औपाधिक और इन इंद्रिय-मन से प्रतीतमान जगत-दृश्य से भिन्न आत्मशांति है। मेरा वैभव प्रपंचशून्य है। इस आंतरिक, स्व आत्मवैभव के बोध में जीने वाले के लिए शाश्वत परमानंद है। धिक्कार है लौकिक प्रलोभन को जिसमें फंसकर संसार के लोग जल रहे हैं। और अंत में मूर्ख बनकर रह जाते हैं, क्योंकि सब छूट जाता है। जो छूट जाये, उसमें चिपकना मूर्खता है। स्वात्मा सदा साथ है, इसमें ही रमना चाहिए।

* * *

कैसा क्षणिक है जीवन, जिसके लिए मनुष्य कैसे-कैसे कर्म करने के लिए तैयार है। सद्गुरु कबीर ने कहा है—“कबीर जीवन कुछ नहीं, खिन खारा खिन मीठ। आज अलहजा मारिया, काल्ह मसाना दीठ ॥” जिसने आज किसी योद्धा को मारा, वह कल स्वयं मृत होकर श्मशान में लेटा मिलता है। जीवन की क्षणभंगुरता को निरंतर देखने वाला कोई पाप नहीं करता।

* * *

एकाग्रता एवं इससे ऊपर निर्विकल्प समाधि भीतर की गगन गुफा है, जिससे शांति का अमृत-रस अजर-अक्षीण रूप में झरता है—“रस गगन गुफा में अजर झरे।” यह सद्गुरु कबीर का प्रसिद्ध शब्द है। वहां बिना बाजा के ही आत्म-अनुभव रूप आवाज उठती है। समाधि-अभ्यासी को ही यह सुनाई पड़ता है। बिना सरोवर के वहां मन रूपी कमल खिला रहता है जिसमें स्थित होकर जीव आनंदमग्न रहता है। समाधि में बिना चंद्रमा के मीठी उजेली रहती है। ऐसे समाधिलीन कहीं-कहीं कोई होता है। दशों द्वार से लौटकर जब जीव अंतर्मुख होता है, तब शाश्वत आनंद का अनुभव होता है। वहां कामादि सारे विकार जल जाते हैं। इस दिव्य स्थिति में पहुंचकर अनादिकाल की लगी तृष्णा शांत हो जाती है और भ्रम, अविद्या, कर्म-जाल, मानसिक पाप, मन के रोग सब नष्ट हो जाते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि हे भाई संतो! ऐसा जीव अमर निर्वाण-पद को पा जाता है। वह कभी जन्म-मरण के बंधन में नहीं आता।

रस गगन गुफा में अजर झरे ॥ 1 ॥

बिन बाजा झनकार उठे जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै ॥ 2 ॥

बिन ताल जहँ कैवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केलि करै ॥ 3 ॥

बिन चंदा उजियारी दरसे, जहँ-तहँ हंसा नजरि परै ॥ 4 ॥

दसवें द्वारे तारी लागी, अलख पुरुष को ध्यान धरै ॥ 5 ॥

काल कराल निकट नहिं आवै, काम क्रोध मद लोभ जरै ॥ 6 ॥

जुगन-जुगन की तृष्णा बुझानी, करम भरम अघ व्याधि टरै ॥ 7 ॥

कहँ कबीर सुनो भाई साधो, अमर होय कबहूँ न मरे ॥ 8 ॥

□

कन्यादान

लेखक—श्री विजय चित्तौरी

‘अम्मा! तुम बाबू जी को समझाती क्यों नहीं। क्यों मेरी जिन्दगी तबाह करने पर तुले हैं। मैंने कह दिया कि मैं अभी शादी नहीं करना चाहती।’

‘पार्वती बिटिया! तू पागल तो नहीं हो गयी है। गांव में कभी और किसी की बहिन-बेटी ने इस तरह ज़बान खोली है। तुम्हारी यह बात कहीं तुम्हारे ससुराल वाले, नाते-रिश्तेदार और गांव वाले सुन लें, तो गज़ब हो जायेगा। क्या सोचेंगे सब?’

‘क्या सोचेंगे सब....? यही न कि पं. राम आसरे की बिटिया पर घर-परिवार, कुल और समाज का कन्ट्रोल नहीं है। सोचते रहें लोग। मैं विवाह नहीं करती।’

‘पार्वती, जरा सोच, तेरी मंगनी हो चुकी है, साइत-सुदिन सब पड़ गया है, अब तू कहती है शादी नहीं करूंगी। ऐसी बात अब ज़बान पर लाना भी नहीं। तुमको कुछ पता है कि तुम्हारे लिए तुम्हारे बाबू ने कितने ऊंचे खानदान का लड़का पसन्द किया है। उसका कुल-गोत्र कितना ऊंचा है। तेरी कुण्डली भी उससे मिल रही है। वे सब धनी-मानी लोग हैं। आखिर क्या कमी है उन लोगों में, जो तू अपशकुन कह रही है।’

‘अम्मा! मैं थूकती हूँ ऐसे ऊंचे खानदान, कुल-गोत्र और कुण्डली पर। यही सब चोचला तो बाबू जी ने सुधा दीदी के लिए भी किया था। उस शादी का आखिर क्या हश्र हुआ। कुल, गोत्र, खानदान इतना ऊंचा हो और उस खानदान के लोग ऐसे राक्षस और कसाई। हमारी सुधा दीदी का कितना बुरा अन्त हुआ। सल्फास खाकर आत्महत्या करनी पड़ी उनको। अम्मा क्या चाहती हो, तुम्हारी दूसरी बेटी पार्वती भी वही रास्ता अपनाये....?’

कहते-कहते पार्वती फफककर रो पड़ी। बड़ी बेटी सुधा का नाम आते ही पार्वती की मां रजवन्ती की आंखें भी छलछला आयीं। रजवन्ती आकर बेटी के बगल बैठ उसे चुप कराने लगी।

पार्वती के पिता पं. राम आसरे ने जैसे ही घर के भीतर प्रवेश किया अन्दर का दृश्य देखकर परेशान हो उठे। जरूर मां-बेटी में किसी बात पर तकरार हुई है। पण्डित जी ने प्यार से बेटी के सिर पर हाथ रखा और पूछा : ‘बेटी, पार्वती क्या हुआ है? अम्मा ने कुछ कहा, क्या?’

पार्वती बोली कुछ नहीं। सिर झुकाए सुबकती रही और आंसू पोंछती रही। रजवन्ती थोड़ी सहज हुई। उसने पण्डित जी से कहा—‘सुन रहे हो अपनी लाड़ली को। नाक कटायेगी हम सबकी। चार दर्जा पढ़ क्या लिया सब नेम-धरम घोलकर पी गयी। कह रही है कि ऊंचे खानदान से घृणा है, कुल, गोत्र, कुण्डली, साइत-सुदिन बेकार की चीजें हैं। दहेज के लिए खेत बेचने से एतराज कर रही है। कह रही है शादी हरगिज नहीं करेगी। अभी और पढ़ेगी। और सुनो, कह रही है कि यदि यह शादी हुई तो उसके साथ भी वही सब होगा जो सुधा बिटिया के साथ हुआ था। अब तुम्हीं समझाओ इसे...?’

सुधा बिटिया का नाम आते ही पण्डित जी भी भावुक हो गये। उनके सामने सुधा बेटी का रूखा-सूखा मलिन मुख प्रकट हो गया, जिसे अन्तिम बार पण्डित जी ने देखा था। सुधा बेटी के ब्याह से लेकर उसकी आखिरी सांस तक का एक-एक चित्र उनकी आंखों के सामने नाचने लगा।

पण्डित राम आसरे पुराने ख्यालात के आदमी हैं, धार्मिक रीति-रिवाजों और परम्पराओं के ज़बरदस्त

समर्थक हैं। ब्राह्मण धर्म को बखूबी निभाने का प्रयास करते हैं। सुबह-शाम घण्टे-घण्टे भर पूजा-पाठ करना, धार्मिक पर्वों पर कथा-वार्ता एवं दान-दक्षिणा देने में कभी चूक नहीं करते। धर्म सम्मत समस्त रीति-रिवाजों के न केवल ज़बरदस्त समर्थक हैं वरन् उनका बखूबी पालन भी करते हैं।

पण्डित जी के अनुसार शास्त्रों में लिखा है कि रजस्वला होने के पूर्व कन्या का विवाह कर देना चाहिए। अपनी इसी विचारधारा के परिपालन में दसवीं में पढ़ने वाली अपनी पहली मासूम बेटी सुधा का विवाह कर दिया था।

पहली बेटी सुधा के विवाह के पूर्व साल भर उन्होंने पूरे क्षेत्र में घूम-घूम कर रिश्ते तलाशे थे। अनेक अच्छे रिश्ते मिले भी थे। बाद में कुल-गोत्र और कुण्डली आदि की जांच-पड़ताल में अधिकांश अच्छे रिश्ते अस्वीकृत कर दिये गये थे। क्षेत्र में एक ही कुलीन ब्राह्मण वर ऐसा मिला था जिसका कुल-गोत्र भी अच्छा था और जिसकी कुण्डली भी बेटी सुधा की कुण्डली से मिलती थी। वहीं बिटिया की बात चली और पांच लाख रुपये दहेज में मामला पक्का हो गया था।

बेटी का विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। बिरादरी ने भोज व्यवस्था से लेकर दहेज तक की भूरि-भूरि प्रशंसा की। पं. राम आसरे और पार्वती की मां ने भी राहत की सांस ली कि चलो बेटियों में एक को तो निबटा दिया।

महीने भर बाद सुधा ससुराल से नैहर आयी। टैक्सी से उतरकर सुधा जैसे ही बाप का पांव छूने बढ़ी, पं. राम आसरे बिटिया का मुख देख कर सन्न रह गये। महीने भर में ही फूल-सी बेटी सूखकर कांटा हो गयी थी? सुधा, बाप का पांव पकड़कर फूट-फूटकर रो पड़ी। सुधा की मां ने किसी तरह सुधा को संभाला और आंगन में ले गयी।

पं. राम आसरे को समझते देर न लगी कि बिटिया के ब्याह में कहीं कुछ भारी चूक हो गयी है। चूक क्या हुई, कहां हुई इसी को जानने के लिए वे बैचेन हो गये। सीधे बेटी से कुछ पूछना अनुचित जान वे सुधा की मां की प्रतीक्षा करने लगे।

भोजन के लिए चौके पर जब पण्डित जी बैठे तो सामने बोरा बिछा सुधा की मां भी आकर बैठ गयी। पण्डित जी ने पूछा, 'पार्वती की अम्मा! सुधा को आखिर क्या हो गया। ससुराल में सूखकर कांटा कैसे हो गयी? कोई भारी तकलीफ है?'

पण्डित जी का सवाल सुन पार्वती की मां थोड़ा पण्डित जी के और निकट खिसक आयी। उसने कहा, 'पार्वती के बाबू, इस शादी में एक भारी चूक हो गयी...।'

“चूक...? वह क्या...?” पण्डित जी ने पूछा।

‘शादी में आपने सब तो देखा, लेकिन लड़के का चाल-चलन नहीं देखा। लड़का शराबी है। हमेशा दारू में धुत्त रहता है। दारू पीकर उसने कई बार सुधा को पिटा भी। जलती सिगरेट से उसको दागा भी। उसका कुछ औरतों से गलत सम्बन्ध...।’

पण्डित जी का चेहरा उतर गया। आगे भोजन कर पाना उनके लिए मुश्किल हो गया। थोड़ी देर शान्त वहीं चौके पर बैठे रहे, फिर बोले, ‘सुधा ने कुछ बताया, सुधार की कोई गुंजाइश?’

“वह कहती है कि उसका पति गांव का सबसे आवारा लड़का है। घर वालों की उसके सामने चलती नहीं। दहेज में आपने जो रकम दिया था उसका ज्यादातर हिस्सा वह घर वालों से छीन ले गया और उसी से गुलछर्रे उड़ा रहा है। पार्वती के बाबू! सुधा के साथ बहुत बड़ा अनर्थ हुआ। वह तो जब से आयी है उसकी आंखों से आंसू ही नहीं सूख रहे हैं। कहती है यहीं नैहर में मेहनत-मजदूरी करके रह लेगी लेकिन ससुराल नहीं जायेगी। हमारी फूल-सी बिटिया...। बेचारी के कितने बड़े-बड़े सपने थे। सब हम लोगों ने

जलाकर खाक कर दिये। हे भगवान! अब हमारी बिटिया सुधा का क्या होगा...?” पार्वती की मां सिसक-सिसक कर रोने लगी। पं. राम आसरे चुपचाप बेजान से कुछ देर वहीं चौंके पर बैठे रहे, खाना वहीं छोड़ उठ गये।

अगले दिन पण्डित जी स्वयं समधियाने गये थे। समधी जी से वे सभी बातें कह सुनायी थी जो उन्होंने पार्वती की मां से सुनी थी। समधी जी तो पं. राम आसरे से भी ज्यादा दकियानूसी थे। उन्होंने कहा—पण्डित जी! आपने कन्यादान कर दिया अब आपकी जिम्मेदारी खत्म। सुधा कभी आपकी बेटी रही, अब तो वह हमारी बहू है। यदि उसे कोई दुःख-तकलीफ है तो पहले मुझसे बताना चाहिए था। जहां तक लड़के के चाल-चलन की बात है तो जैसा जुग चल रहा है वैसा ही हमारा लड़का है। फिर भी आप निश्चिन्त रहें, हमारे जीते जी सुधा को कोई तकलीफ नहीं होने पायेगी। एक बात और है पण्डित जी, आपकी बेटी गुणवती होगी तो वह हमारे बेटे को खुद भी राह पर ला देगी...?

पण्डित राम आसरे समधी जी के पाण्डित्यपूर्ण व्याख्यान सुनकर भारी मन से लौट आये। उन्होंने घर आकर पार्वती की अम्मा को यही समझाया कि दोष न हमारा है न उनका। सुधा की किस्मत में जो लिखा होगा वही होगा।

सुधा को मैके आये अभी पन्द्रह दिन भी न बीता होगा कि उसका देवर टैक्सी लेकर बुलाने आ गया। सुधा का सुख-चैन एकबारगी फिर छिन गया। उसके ससुराल के घाव फिर हरे हो गये। उस शाम को न खाना खाया और न किसी से कुछ बात की। मां से केवल इतना कहा कि पापा से कह दो कि वे देवर को लौटा दें, सुधा की विदाई नहीं होगी। वह गुमसुम पार्वती के कमरे में लेट गयी।

पण्डित और पण्डिताइन घोर असमंजस की स्थिति में आ गये। क्या करे, क्या न करे? उन लोगों ने सुधा के देवर को समझाने की कोशिश की कि वह

लौट जाये। सुधा को आये ही कितना दिन हुआ है। कुछ दिनों बाद आकर लिवा जायेगा। लेकिन वह (सुधा का देवर) तो बस एक ही रट लगाये जा रहा था कि पापा ने कहा है कि बिना भाभी को लिये मत आना। सबेरा हुआ तो पण्डित और पण्डिताइन ने बेटी को समझाने का बहुत प्रयास किया। बार-बार वेद-शास्त्रों को उदाहरण दिया। स्त्री धर्म और कर्तव्य पर लम्बा व्याख्यान दिया। इस बात पर ज़ोर दिया कि शादी के बाद स्त्री के लिए पति ही परमेश्वर होता है। सुधा के हठ के आगे जब पण्डित जी के सारे तर्क बेकार हो गये तो वे झल्ला पड़े। उन्होंने कहा—‘बेटी! तुम्हें रोकने का अब हमारा कोई अधिकार नहीं है। जिस घर में तुम्हें ब्याह दिया है वही तुम्हारा घर है। बेटी का जन्म मैके में ज़रूर होता है लेकिन अर्थी ससुराल से निकलती है।’

बाप के स्पष्ट और कठोर वचन सुन बेटी विलाप करने लगी। असलियत को उसे स्वीकार करना पड़ा। जिस घर में उसने जन्म लिया, जहां की माटी में लोट-पोट करके और जिनकी गोद में खेलकूद करके वह सयानी हुई, वे सब पराये हो गये थे। नालायक पति और ज़ल्लाद जैसे ससुराल वाले उसके अपने सगे बन गये थे। सुधा ससुराल चली गयी।

सुधा के ससुराल चले जाने के बाद पं. राम आसरे और उनकी पत्नी की बेचैनी और बढ़ गयी। वे पुत्री का हाल जानने के लिए परेशान थे। दो हफ्ते बीत गये। इसी बीच अचानक पण्डित जी की दूर के रिश्ते की बहन शारदा का आगमन हुआ। शारदा भी सुधा के ससुराल वाले गांव में ही ब्याही थी। शारदा से पण्डित जी ने पहले उसका, फिर बेटी सुधा का हाल पूछा। शारदा ने एक लिफाफा पण्डित जी को पकड़ा दिया। यह सुधा की चिट्ठी थी। पण्डित जी चिट्ठी पढ़ने लगे—

बाबू जी, आपका आदेश मान मैं यहां नरक में अन्तहीन यातना भुगत रही हूं। सास, ससुर, ननद, देवर और जेठानियों के सामने नौकर से ज्यादा मेरी

अहमियत नहीं है। घर के सभी लोग चाहते हैं कि मैं उनके आगे-पीछे घूमती रहूँ, उनकी सेवा-टहल करती रहूँ। मैं सुबह पांच बजे से ही खटने लगती हूँ। ससुर जी के स्नान के लिए कुएं से ताजा पानी लाती हूँ। घर की साफ-सफाई करती हूँ। पूरे परिवार का अकेले खाना बनाती हूँ। सबको खिलाने-पिलाने के बाद जो बचता है उसे खाती हूँ। पर्दा और बंदिशें इतनी ज्यादा कि हाथ भर लम्बा घूँघट अनिवार्य है, आवाज़ इतनी धीमे निकले कि कोई सुन न पाये। एक पल को सांस नहीं मिलती। रात में सबको खिलाने-पिलाने के बाद सासू जी के पांव दबाती हूँ, जब तक उनको नींद नहीं आ जाती। इतना सब करते-करते रात के ग्यारह बज जाते हैं, तब तक मेरी भूख मर चुकी होती है। रसोई में यदि कुछ बचा मिलता है तो उसे पेट के हवाले करती हूँ।

बाबू जी! इतना सब तो झेला जा सकता है, यदि स्त्री को प्यार और सम्मान मिले। जिस पति को आपके शास्त्र में परमेश्वर कहते हैं वह तो निरा राक्षस है। उसकी बदौलत मेरा अपना कमरा चौबीसों घण्टे दारू की पन्नियों और सिगरेट के टुकड़ों से भरा रहता है। दारू सने बिस्तर को ओढ़ती-बिछाती हूँ।

वह राक्षस जबरन मेरे मुंह में दारू उड़ेलता है। मुंह बन्द कर लेने पर शरीर पर दारू उड़ेल देता है। जबरन जलती सिगरेट मुंह में डालता है। मुंह बन्द करने पर सिगरेट से शरीर को दागता है।

बाबू जी! मेरी इस दुर्दशा में उस पांच लाख रुपये का मुख्य हाथ है जिसके लिए आपने दो बीघे खेत बेचे। यह राक्षस उसी पैसे से मेरे ऊपर ऐसा अत्याचार कर रहा है। आपके लिए मैं परायी हो गयी। अब तो आपके ऊपर मेरा कोई अधिकार भी नहीं है। लेकिन मेरी एक विनती आपसे जरूर है। मेरी प्यारी बहन पार्वती को ऐसे नरक में न ढकेलियेगा। उसे पढ़ा-लिखाकर होशियार होने के बाद ही उसकी शादी कीजिएगा। बाबू जी, जिस तरह वस्तु मानकर आपने मेरा दान कर दिया, वैसा कन्यादान पार्वती का न

कीजिएगा। पार्वती का विवाह मेरी तरह उच्च कुल, गोत्र और सुपात्र ब्राह्मण खोजकर नहीं अपितु योग्य व चरित्रवान वर खोजकर कीजिएगा।

मां, छोटे भाई और बहिन का ध्यान रखियेगा। मेरे विषय में यदि कोई दुखद समाचार मिले, तो पराया मानकर ही संतोष कर लीजिएगा।

आपकी बेटी

सुधा

अगले दिन सुबह ही पं. राम आसरे को बेटी के दुखद अन्त का समाचार मिला। बेटी ने सल्फास खाकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली थी। पं. राम आसरे और उनके परिवार के लिए यह खबर वज्रपात के समान थी।

समय का अन्तराल बड़े-बड़े घावों को भर देता है। बेटी सुधा के दुखद अन्त का घाव भी पिछले चार सालों में धीरे-धीरे भर गया था। लेकिन आज बेटी पार्वती के विद्रोही तेवर ने वह घाव फिर हरा कर दिया। सुधा की चिट्ठी की आखिरी लाइन बार-बार पण्डित जी के दिमाग पर चोट करने लगी :

‘बाबू जी, जिस तरह वस्तु मानकर आपने मेरा दान किया और मुझे पराया बना दिया वैसा कन्यादान पार्वती का न कर दीजिएगा...।’

पण्डित जी ने अपनी नम आंखों को अंगोछे से पोंछा और बेटी पार्वती के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—पार्वती बेटी ! तू जीती मैं हारा। मैं वही गलती फिर दुहराने जा रहा था, जो मैंने सुधा बेटी के साथ की थी। बेटी, अब तू खूब पढ़ेगी-लिखेगी। अपने पैरों पर खड़ी होगी। तेरा विवाह भी अब मेरी मर्जी से नहीं तेरी मर्जी से होगा।

पार्वती का चेहरा खिल उठा। मानो उसकी मनचाही मुराद पूरी हो गयी।

(‘गंजेडियन तारा’ से साभार)

असल जिंदगी

आत्म-कल्याण के लिए जो आवश्यक बातें हैं, सभी लोग अच्छी तरह से जानते हैं। जरूरत है ज्ञान की बातों को जीवन में आचरित करना। जो हम जानते हैं उसके अनुसार जीवन व्यतीत करने की। हर आदमी को एक बात का ख्याल अवश्य रखना चाहिए कि जो बन सके दूसरे की सेवा करे, दूसरे को सुविधा दे किन्तु जानबूझकर कभी किसी को तकलीफ न दे। कभी किसी को तकलीफ न देना यह बहुत बड़ा धर्म है। आदमी इतना कर ले तो जीवन में बहुत व्यवस्थित रह सकता है।

यह समझना चाहिए कि हमें अपने जीवन में वही मिलता है जो हम दूसरों को देते हैं। किसी के जीवन का कल्याण हम नहीं कर सकते तो हमारे द्वारा किसी का अकल्याण तो नहीं ही होना चाहिए। एक विचारक ने लिखा है कि यदि किसी को अच्छी राय नहीं दे सकते तो किसी को पतन की तरफ प्रेरणा तो न दें।

आज पूरी दुनिया में सबसे अधिक आवश्यकता है अच्छे इंसान की। सद्गुरु कबीर ने कहा है—“सोई हित बन्धू मोहि भावै, जात कुमारग मारग लावै” वही व्यक्ति मुझे अच्छा लगता है और वही व्यक्ति समाज का हितकारी है जो कुमार्ग में जाते हुए व्यक्ति को समझा-बूझाकर अच्छे रास्ते पर ले आये।

आज दुनिया को अच्छे डॉक्टर, अच्छे वकील, अच्छे इन्जीनियर, अच्छे अध्यापक, अच्छे व्यापारी, अच्छे कर्मचारी, अच्छे नेता की जितनी आवश्यकता है उससे कई गुना ज्यादा अच्छे इंसान की आवश्यकता है। अच्छा डॉक्टर होना अलग बात है और अच्छा इंसान होना अलग बात है। अच्छा इन्जीनियर होना अलग बात है और अच्छा इन्सान होना अलग बात है। इसी प्रकार और भी गिना सकते हैं।

यह कोई जरूरी नहीं है कि जो अच्छा डॉक्टर होगा वह अच्छा आदमी भी होगा। डॉक्टर बढ़िया हो सकता है लेकिन आदमी एकदम निकृष्ट हो सकता है।

इन्जीनियर बहुत बढ़िया हो सकता है लेकिन आदमी बहुत गलत हो सकता है।

अतः आज दुनिया को अच्छे आदमी की जरूरत ज्यादा है। अच्छे आदमी के अभाव में ही पूरी दुनिया में अनेक प्रकार की समस्याएं व्याप्त हैं। देश में विद्वानों की कमी नहीं है। अच्छे डॉक्टर और इन्जीनियर, वकील, अफसर, नेता, शासक, प्रशासक आदि की कमी नहीं है। फिर कहां से समस्याएं आ रही हैं? आदमी अपने कर्तव्य पथ से विचलित हो गया है। जो करना चाहिए था वह नहीं कर रहा है और जो नहीं करना चाहिए उसे बराबर करता जा रहा है।

गुणवान होना और सद्गुणी होना दोनों अलग-अलग बात है। साहेब ने तो कहा है—“मानुष तेरा गुण बड़ा” मनुष्य के गुणों की ही विशेषता है। लेकिन साहेब ने जो कहा है वह अलग दृष्टि से कहा है।

गुणवान अर्थात् गुणी होना और सद्गुणवान अर्थात् सद्गुणी होना—ये दोनों अलग-अलग कैसे हैं? एक आदमी बहुत बढ़िया भजन गाता है तो उसके पास एक गुण है, कला है भजन गाने की। एक आदमी बहुत बढ़िया तबला बजाता है। गुण है उसके पास तबला बजाने का। एक आदमी बहुत बढ़िया कपड़ा सिलाई करता है, कपड़े सिलने का गुण है उसके पास। एक आदमी बढ़िया भोजन पकाता है, भोजन बनाने का गुण है उसके पास। किसी एक कला का ज्ञान होना यह गुणवान होना है। गुण इतने अधिक हैं कि कहा नहीं जा सकता। गुणवान होना अलग बात है लेकिन यह जरूरी नहीं है जो आदमी बहुत गुणवान-गुणी है वह सद्गुणवान-सद्गुणी भी हो।

दया नहीं है, क्षमा नहीं है, सत्य नहीं है, ईमानदारी नहीं है तो गुणवान होते हुए भी आदमी सद्गुणी नहीं है। सद्गुणी तो तब होगा आदमी जब उसके जीवन में दया, क्षमा, सत्य, धीर, विवेक, विचार ये सब सद्गुण आयेंगे। और जब तक आदमी सद्गुणी नहीं होगा तब

तक चाहे वह कितना बड़ा भी विद्वान हो जाये उसे जीवन में शांति नहीं मिल सकती, जीवन का कल्याण नहीं हो सकता।

किसी एक गुण से आदमी जीवन निर्वाह कर सकता है, परिवार का पालन-पोषण कर सकता है। गुणों की जरूरत है लेकिन सदगुणों की जरूरत दुनिया में मानवमात्र को है। इनके बिना कभी आदमी सुख से, चैन से रह नहीं सकता है। आज लोगों का जितना ध्यान बाहर की वस्तुओं को बढ़ाने में है उतना ध्यान जीवन को उठाने में नहीं है।

किसी की उन्नति को देखकर लोगों के मन में भावना होती है कि मैं भी वैसा बनूँ और यही भावना गलत काम करवाती है। आज आदमी को एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ लगी हुई है। जितनी होड़ लगती है, जितना आदमी हाय-हाय में लगता है उतना ही आदमी से गलत काम होता है। लेकिन क्या कभी किसी शांत आदमी को देखकर, किसी दयालु, ईमानदार, सेवापरायण और परोपकारी व्यक्ति को देखकर या किसी वैराग्यवान संत को देखकर मन में हुआ है कि मैं भी ऐसे दयावान, परोपकारी और सेवापरायण बनूँ। मैं भी ऐसे वैराग्यवान बनूँ।

सारी होड़ बाहर की चीजों के लिए है। सदगुण के क्षेत्र में कोई होड़ ही नहीं है। उधर देखते ही नहीं हैं। उसकी उपेक्षा कर देते हैं। इसलिए जीवन सदगुणों के क्षेत्र में खाली ही रह जाता है। ज्ञान की बातें पढ़ते, सुनते और कहते हैं लेकिन आचरण नहीं कर पाते तो काम कहां से होगा?

आवश्यकता है जीवन को सदगुणी बनाने की। आदमी जितना अधिक सदगुणी बनता जायेगा उतनी संसार में जो समस्याएं हैं कम होती जायेंगी। फिर तो संसार ही स्वर्ग बन जायेगा। अच्छी बुद्धि जब तक नहीं होगी तब तक अच्छा बनने की भावना कहां से आयेगी।

महात्मा गांधी प्रायः गाया करते थे 'रघुपति राघव राजा राम, सबको सन्मति दे भगवान' जिन्होंने इस भजन को बनाया है वे कहते हैं कि हे भगवान! तू सबको

सन्मति दे। सुकरात यूनान का एक महान दार्शनिक संत हुआ है। उन्होंने कहा है कि हे भगवान! इस दुनिया में आप सबको सदगुणी बनाना लेकिन उसकी शुरुआत मुझसे करना। कैसी और कितनी उदात्त भावना है? वे कहते हैं कि सबको सदगुणी बनाना किन्तु शुरुआत मुझसे करना। यदि मैं सदगुणी बन गया तो मेरा कल्याण हो गया, मुझे शांति मिल गयी, और मैं यही चाहता हूँ। हर आदमी यही चाहता है।

हम चाहते हैं कि दूसरा आदमी सदगुणी बनें, हम न बनें। 'सबको सन्मति दे भगवान' में एक कामना है लोगों के लिए। लेकिन आज आदमी बड़ा चालाक हो गया है। दूसरों को सन्मति देने के लिए भगवान से निवेदन करता है लेकिन अपने पर जब बात आती है तब कहता है 'रघुपति राघव राजाराम, मुझको सम्पत्ति दे भगवान' मुझे सम्पत्ति दे दो और बाकी को सन्मति दे दो। आदमी कितना बदल गया है? और दुख इसीलिए है। आवश्यकता है अच्छी दृष्टि की। अच्छी बुद्धि जहां होगी, सन्मति जहां होगी वहां आदमी के जीवन में कभी दुख नहीं होगा। यदि हमारे मन में दुख होता है, पीड़ा होती है, क्लेश होता है तो इसका अर्थ है हमारी बुद्धि में कहीं न कहीं कोई त्रुटि है। किन्तु बुद्धि का बिगाड़ दिखाई नहीं पड़ता है, समझ में नहीं आता है।

हर आदमी अपने को बहुत बड़ा विद्वान और ज्ञानी मानता है। दुनिया में एक भी आदमी अपने को अज्ञानी मानने के लिए तैयार नहीं है। किसी भी परिचित-अपरिचित आदमी को अचानक कह दो कि आप अज्ञानी हैं तो वह लड़ने के लिए तैयार हो जायेगा कि तुमने मुझे अज्ञानी कैसे कह दिया।

किसी आदमी को जब आप अज्ञानी कहते हैं और वह लड़ने के लिए तैयार हो जाता है तो इसका मतलब साफ है कि वह अज्ञानी है। यदि ज्ञानी होता तो लड़ता नहीं। आदमी अपने को समझ नहीं रहा है। यदि मैं ज्ञानी हूँ तो लड़ाई क्यों कर रहा हूँ। अपने अज्ञान को समझ पाना और स्वीकार कर पाना यही तो भजन है, यही तो साधना है। और ऐसा लोग कहां कर पाते हैं?

भजन गाते-गाते वर्षों बीत गये लेकिन भजन का अर्थ समझ नहीं पाते। लोग समझते हैं कि भजन गाना ही पर्याप्त है। इसकी भी जरूरत है। भजन गाने से अच्छी भावना आती है, लोगों के मन में प्रसन्नता आती है। भजन गाना चाहिए, लेकिन भजन गाने से कल्याण नहीं होगा। कल्याण होगा भजन करने से।

एक आदमी ऐसा है, जो भजन गाना बिल्कुल ही नहीं जानता लेकिन यदि भजन करता है तो उसका कल्याण हो सकता है। भजन गाना तो जानता है लेकिन भजन नहीं करता तो गाता रह जाये जीवन भर क्या फर्क पड़ता है। बड़े-बड़े कलाकार के जीवन देखो तो सामान्य आदमी से भी गया-बीता है। कितने कलाकार बिना शराब पीये भजन गा ही नहीं सकते। बढ़िया भजन गाना है तो शराब पीना जरूरी है। यह कैसा भजन गाना हुआ। केवल गा रहे हैं किन्तु जीवन पर ध्यान नहीं है। भजन करना क्या है? भजन करना है अपने अज्ञान को समझ लेना। भजन करना है अपने अहंकार को समझ लेना और समझकर अहंकार का त्याग कर देना। अहंकार का त्याग यही सबसे बड़ा भजन है और यही सबसे बड़ी साधना है।

आदमी बहुत कुछ जानता है, लेकिन अपने अज्ञान को जान नहीं पाता और जो अपने अज्ञान को जानता है सचमुच में वही ज्ञानी है। एक महान नीतिकार हुए हैं अप्पय दीक्षित। उनका एक प्रसिद्ध श्लोक है—

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः ।

ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः स्वाज्ञान ज्ञानिनो विरलाः ॥

नीति को जानने वाले, ज्योतिष के जानने वाले, वेद-शास्त्र के जानने वाले, यहां तक ब्रह्म को जानने वाले बहुत मिलते हैं, परंतु अपने अज्ञान को जानने वाले बिरले हैं।

आजकल विज्ञान जितना बढ़ता जा रहा है, ज्योतिष का जंजाल उतना ही ज्यादा बढ़ता जा रहा है। जितना विज्ञान बढ़ता जा रहा है अंधविश्वास उतना ही बढ़ता जा रहा है। दुर्भाग्य तो यह है कि विज्ञान की खोज-विज्ञान

के द्वारा प्रदत्त जो चीजें हैं जो आधुनिक तकनीकी की देन है वहां भी आदमी अंधविश्वास में पड़ा हुआ है।

एक बार एक सज्जन ने एक कम्प्यूटर सेंटर खोला। उसके उद्घाटन में सबसे पहले गणेश जी की पूजा की गई। मैंने पूजा करवाने वाले से पूछा कि क्या गणेश जी को कम्प्यूटर का ज्ञान था। गणेश जी और कम्प्यूटर से कोई तालमेल ही नहीं है। आदमी के दिमाग में अंधविश्वास भरा हुआ है। हम गणेश जी की पूजा कर लेंगे तो हमारा कम्प्यूटर सेंटर बहुत बढ़िया चलेगा। यदि गणेश जी की पूजा करने से सारे व्यापारियों की दुकान बढ़िया चलती तो किसी भी व्यापारी का कभी कोई नुकसान नहीं होता। सरस्वती की पूजा करने से विद्या आ जाती तो भारत का एक भी विद्यार्थी फेल नहीं होता। दुनिया के सारे विद्वान हमारे यहां ही होते। अगर हनुमान की पूजा करने से ताकत आती तो भारत के सभी लोग पहलवान हो जाते।

आप जिसकी भी पूजा करना चाहते हैं, अवश्य करें। इससे आपके मन में सात्त्विक भावना आयेगी, संस्कार अच्छे बनेंगे। लेकिन यह अच्छी तरह से समझ लें कि किसी भी दिशा में सफलता मेहनत करने से मिलेगी, पूजा करने से नहीं। गणेशजी की पूजा करने से सारे विघ्न दूर नहीं हो जायेंगे, हनुमान की पूजा करने से ताकत नहीं आ जायेगी और सरस्वती की पूजा करने से विद्या नहीं आ जायेगी, लेकिन दिमाग में अंधविश्वास घुसा हुआ है। आजकल तो लोगों के मन में वास्तुशास्त्र का रोग घुस गया है। इसके पीछे बड़े-बड़े लोग मूर्ख बनते हैं। कह दिया जाता है कि आपका दरवाजा पूरब तरफ है इसे उत्तर तरफ कर लो फिर सब ठीक हो जायेगा।

जब कालोनियां बनती हैं, जमीन कटती है और उसमें मकान बनते हैं तो किसी का दरवाजा पूर्व और किसी का पश्चिम तो होना ही होना है। बड़े-से-बड़े वास्तुशास्त्री यह गारंटी ले कि उनके वास्तुशास्त्र के अनुसार मकान बनवाने के बाद मकान में किसी प्रकार का कोई नुकसान नहीं होगा, मकान में रहने वाले कभी

बीमार नहीं पड़ेंगे, कभी किसी की मृत्यु नहीं होगी। क्या ऐसी गारंटी वह ले सकता है? लेकिन उसके पीछे बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग दौड़ रहे हैं। तो क्या कहा जाये!

ज्योतिष जानने वाले बहुत मिलते हैं। ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान भी पेट-धन्धा के लिए ही है। आज से तीस वर्ष पहले की बात है। छत्तीसगढ़ में पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी का कार्यक्रम चल रहा था तो मुझे कुछ काम से एक बाजार में जाना पड़ा। रास्ते-रास्ते जा रहा था। पीछे से आवाज आयी महाराज जी! महाराज जी!! मैंने सोचा कि मेरा यहां किसी से कोई परिचय नहीं है, मैं तो पहली बार यहां आया हूं, मुझे कौन पुकारेगा। थोड़ा-सा रुका और फिर चलने लगा। फिर पीछे से आवाज आयी तो मैं रुक गया। पीछे लौटकर देखा तो सड़क किनारे एक ज्योतिषी अपना पोथी-पत्रा फैलाकर बैठे हुए थे। उसने कहा—महाराज जी, मैं आपको पुकार रहा हूं, आइये!

थोड़ी झिझक तो हुई लेकिन फिर भी गया। उन्होंने एक चादर बिछा दी और कहा—महाराज जी! बैठिये। बैठने के बाद वे पूछने लगे कि कहां से आये हैं, क्यों आये हैं? मैंने अपना परिचय दिया। कुछ बातचीत होने के बाद उन्होंने कहा—महाराज जी! हमारे कल्याण की बात बताइये। मैंने उनसे कहा कि आप तो ज्योतिषी हैं, सबका कल्याण आप बता रहे हैं मैं आपको क्या बताऊं? उन्होंने कहा—महाराज जी! देखिये मेरी उम्र साठ वर्ष से अधिक हो गयी है, घर में ऐसी कोई पूंजी नहीं है कि मैं दुकान कर सकूं और दुकान करके परिवार का पालन-पोषण कर सकूं। इस उम्र में मजदूरी भी नहीं कर सकता। ये सब को देखते हुए ज्योतिष का धंधा अपनाया हूं। दो-चार मूर्ख लोग आ जाते हैं, फंस जाते हैं और मेरा काम चल जाता है। मैंने उसको उसकी ईमानदारी के लिए धन्यवाद दिया।

कोई ज्योतिषी किसी के भाग्य को जानता नहीं है। बड़े-बड़े तांत्रिक लोग यह दावा करते हैं कि अमुक अंगूठी पहन लो, अमुक ताबीज बांध लो तो सारे विघ्न-बाधा दूर हो जायेंगे और सारी रिद्धि-सिद्धि मिल जायेगी। यदि ऐसा होता तो वे सड़क किनारे धूप में

दिनभर बैठे न रहते। वे स्वयं उस अंगूठी को पहन लेते और धनपति हो गये होते। लेकिन आदमी ऐसा अंधविश्वास में पड़ा हुआ है सदियों से कि क्या कहना! आज भी इस विज्ञान के युग में अंधविश्वास दूर नहीं हो पा रहा है।

एक भविष्यवक्ता का दावा था कि किसी भी व्यक्ति के हाथ की रेखा को देखकर मैं उस आदमी की मृत्यु की तारीख बता सकता हूं। उसकी बड़ी प्रसिद्धि फैली। एक राजा तक बात गई। राजा ने उसे बुलाया। वह तो बहुत खुश हुआ कि मैं राजा के पास जा रहा हूं और बड़ा ईनाम मिलेगा। सभा लगी हुई थी, भविष्यवक्ता आये। राजा ने पूछा कि तुम्हारी क्या विशेषता है। उन्होंने कहा—राजन् ! मैं किसी भी व्यक्ति के हाथ की रेखा को देखकर बता सकता हूं कि उसकी मृत्यु कब होगी।

राजा ने अपना हाथ दिखाया और कहा—देखो, मेरा हाथ, इसमें क्या लिखा है? हाथ देखकर भविष्यवक्ता ने कहा—हुजूर! आपकी मृत्यु आज से दो साल सात महीने पंद्रह दिन सात घंटे बीस मिनट सत्रह सेकंड बाद होगी। राजा ने कहा कि क्या यह बात एकदम पक्की है। भविष्यवक्ता ने कहा—हां हुजूर! आपके हाथ की रेखा यही बता रही है। राजा ने कहा—अच्छा यह बताओ तुम्हारी मृत्यु कब होगी? भविष्यवक्ता ने कहा—राजन् ! मेरी मृत्यु सात वर्ष तीन महीने इक्कीस दिन चार घण्टे सत्ताइस मिनट बाद होगी। राजा ने कहा—क्या तुम्हारी बात पक्की है? उन्होंने कहा—हां हुजूर! मेरी बात एकदम पक्की है। राजा ने अपने सिपाही से कहा कि उठाओ तलवार और इसकी गर्दन काट दो। भविष्यवक्ता का वहीं काम तमाम हो गया। सार यह है कि कोई ज्योतिषी किसी के भविष्य के बारे में पूरा सच नहीं बता सकता। उसे अपने और अपने परिवार वालों के भविष्य का ही सही ज्ञान नहीं रहता। ज्योतिष जाल में पड़ना अपने समय-शक्ति को नष्ट करना है और भूल-भ्रम में जीवन व्यतीत करना है।

मूल प्रसंग यह है कि नीति के जानने वाले बहुत

मिलते हैं, नियति अर्थात् ज्योतिष के जानने वाले ज्योतिषी, वेद को पढ़ने वाले, शास्त्रों के ज्ञाता बहुत मिलते हैं, यहां तक ब्रह्म को जानने वाले ब्रह्मज्ञानी भी बहुत मिल जाते हैं लेकिन 'स्वाज्ञान ज्ञानिनो विरलाः' अपने अज्ञान को जानने वाले बिरले लोग होते हैं। और जो अपने अज्ञान को जान लिया कि मेरा बंधन कहां है, क्यों मुझे दुख मिल रहा है, भटकने का कारण क्या है, और जानकर दूर कर देता है वही आदमी सही अर्थों में सच्चा ज्ञानी होता है।

ज्ञान के अभाव में ही सब भटक रहे हैं। विद्वान हो जाना अलग बात है। पढ़-लिखकर अनेक विषयों का ज्ञान कर लिये, विद्वान हो गये लेकिन विद्वान होना अलग है और ज्ञानी होना अलग है। एक अनपढ़ आदमी जो कभी स्कूल गया ही नहीं है वह भी ज्ञानी हो सकता है। रैदास, कबीर और अनेक ऋषि-मुनि किस विश्वविद्यालय में जाकर पढ़ाई किये थे, आज उनके जैसा ज्ञानी कौन मिलेगा?

अपने जीवन को समझना, स्वयं को समझना—यह सबसे बड़ा ज्ञान है। भौतिक ज्ञान की भी आवश्यकता है क्योंकि व्यवहार और शरीर है। वैसे ज्ञान को संतों ने चार भागों में बांटा है—भौतिक ज्ञान, व्यावहारिक ज्ञान, चारित्रिक ज्ञान और आत्मिक ज्ञान। भौतिक ज्ञान का अर्थ है जिस ज्ञान से जीवन निर्वाह हो। भौतिक ज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि एक आदमी एक जन्म में क्या हजार जन्मों में भी पूरा जान नहीं सकता है। और सबको जानने की जरूरत भी नहीं है। हमें तो इतना जानना है कि कौन-सा धंधा करें जिससे हमारा व्यवहार और जीवन चल सके।

भौतिक क्षेत्र में केवल इतना जानना है कि किस काम को करने से हमारा जीवन निर्वाह हो सकता है। भौतिक शरीर की आवश्यकता की पूर्ति के लिए भौतिक ज्ञान चाहिए। भौतिक ज्ञान बिलकुल बेकार है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

कितने संत-महात्मा होते हैं जो अपने को बहुत बड़ा ज्ञानी मानते हैं, आत्मज्ञानी भी कहते हैं वे जैसे ही मंच पर बैठेंगे कहेंगे सज्जनो, आजकल विज्ञान दुनिया

का विनाश कर रहा है। विज्ञान धर्म को चौपट कर रहा है इसलिए विज्ञान से बचना चाहिए। विज्ञान इस दुनिया का पतन कर रहा है। वे यह भूल जाते हैं कि जिस गाड़ी में बैठकर वे प्रवचन देने के लिए आये हैं वह विज्ञान की देन है। जिस माइक से वे बोल रहे हैं वह माइक भी विज्ञान की देन है। जो घड़ी पहने हुए हैं वह विज्ञान की ही देन है। किन्तु विज्ञान का खंडन करते चले जायेंगे।

विज्ञान का अपना क्षेत्र है, उसकी आवश्यकता है। उसका खण्डन करना विज्ञान को न समझना है। विज्ञान का अपना एक क्षेत्र है और उसकी आवश्यकता है। लेकिन इतना समझना होगा कि चाहे विज्ञान जितना आगे बढ़ जाये उससे आदमी को आत्मसंतोष और आत्मशांति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

दूसरा है व्यावहारिक ज्ञान। बिना व्यावहारिक ज्ञान के व्यवहार में जगह-जगह अड़चनें आती हैं। किनसे कैसा व्यवहार लेना है; क्या बोलना है, कैसे बोलना है आदि बातों की जानकारी व्यवहार में आवश्यक है। बोलने का तरीका यदि सही नहीं है तो बनता हुआ काम भी बिगड़ जाता है और बोलने का तरीका यदि सही है तो बिगड़े काम भी बन जाते हैं।

हमारे जीवन में सहनशीलता की महती आवश्यकता है। आदमी जब तक सहनशील नहीं होगा, अपने मन को नहीं मारेगा तब तक व्यवहार मधुर नहीं हो सकता है। व्यावहारिक जीवन सफल तभी होगा जब आदमी सहनशील होगा और दूसरों की कटु बातों को सह करके चुप रह जायेगा।

एक ने प्रश्न किया कि अच्छी गृहस्थी कैसे बने? उत्तरदाता ने कहा—आदर्श गृहस्थी तब बनेगी जब पत्नी गूंगी हो और पति बहरा हो। इसका मतलब है पति यदि पत्नी को कुछ गलत लगने वाली बात कह दे तो पत्नी को चाहिए कि वह चुप और शांत रहे। यदि पत्नी कुछ कटु बात पति को कह दे तो पति उसे सुनकर अनसुनी कर दे।

व्यावहारिक ज्ञान की जीवन में महती जरूरत है। बिना व्यावहारिक ज्ञान के हम अपने जीवन में सफल

नहीं हो सकते। व्यावहारिक ज्ञान का मतलब है सहनशील होना। जो आदमी सहनशील नहीं होगा वह परिवार के लोगों को निभा नहीं सकता।

जब भी बोले प्रेम से बोलें, मधुर वाणी में बात करें और सहनशील हो जायें। तब व्यवहार उज्ज्वल होगा।

अगला है चारित्रिक ज्ञान। व्यवहार बहुत बढ़िया है, जहां जाते हैं वहां अपने सुंदर व्यवहार से सबके मन को मोह लेते हैं, सबको खुश कर देते हैं। लेकिन चरित्र गड़बड़ है, आचरण ठीक नहीं है तो ऐसे आदमी से सब डरते हैं कि यह आदमी हमारे यहां न आने पाये। कोई कितना विद्वान क्यों न हो, देखने में सुरूप क्यों न हो, कितना मधुरभाषी क्यों न हो लेकिन चरित्रहीन है तो ऐसे आदमी को अपने घर में बुलाना कोई पसंद नहीं करता है।

जिसके पास चरित्र नहीं है उस आदमी को आदमी कैसे कहा जाये?

इसके आगे है आत्मिक ज्ञान। स्वयं का ज्ञान नहीं है कि मैं कौन हूं, मेरा उद्देश्य क्या है, मैं कहां से आया हूं, मुझे क्या करना चाहिए? मुझे दुख कैसे मिलता है? और दुखों से छुटकारा कैसे होगा? इसका ज्ञान नहीं है तो सारा ज्ञान मिट्टी हो जायेगा। इसलिए स्वयं का ज्ञान जरूरी है। जिसे स्वयं का ज्ञान हो गया और उस ज्ञान के अनुसार जिसने अपने जीवन को बना लिया उसका पूरा कल्याण हो गया।

आदमी दुखी बनकर क्यों उलझा हुआ है। क्यों भटक रहा है? क्यों भ्रम में पड़ा हुआ है? अच्छे-अच्छे त्यागी कहलाने वाले लोग भी क्यों अशांत बने हुए हैं? क्योंकि अपने आपका ही ज्ञान नहीं है। अपने आपका, अपनी आत्मा का ज्ञान न होने के कारण मोक्ष को, परमात्मा को बाहर खोज रहे हैं, पुकार रहे हैं, रो रहे हैं। यहां तक कहने वाले संत मिलते हैं कि तुम अपने आपको पूरा का पूरा भगवान को समर्पित कर दो। यह मान लो और हृदय से बार-बार यह पुकारो कि हे भगवान! तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा हूं, पूरा समर्पित कर दो अपने आपको, फिर चाहे जैसा रहो, जैसा करो

तुम्हारा बेड़ा पार है।

यह कौन-सा ज्ञान है? यह ज्ञान के नाम पर जनता को नरक में ढकेलना है। एक अच्छे संत जो बड़े त्यागी, संयमी, वैराग्यवान थे, वे यही कहते थे कि चाहे जैसा करो चाहे जैसा रहो। बस इतना मान लो कि हे भगवान! तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा हूं, फिर तुम्हारा बेड़ा पार है।

लोग तो यही चाहते हैं कि हमें त्याग न करना पड़े, संयम न करना पड़े, मन को न मारना पड़े। उलटा-सीधा सारा काम करते रहें और हमारा बेड़ा पार हो जाये। ऐसे सन्तों के उपदेश से ही ऐसे लोगों को बल मिल जाता है। ऐसा होता है अपने आपका बोध न होने के कारण।

आप भगवान मानते हो तो मानो। अलग मानते हो तो मानकर पूजा करो। लेकिन अलग भगवान जो है वह भी खुश कब होगा जब जीवन का आचरण पवित्र होगा। चाहे जैसा कर्म करते रहो, भगवान का नाम लेते रहो बस बेड़ा पार हो जायेगा। ऐसा कहना गलत है। तमाम खुराफाती लोग इस दुनिया में हैं उनके लिए फिर रोक-टोक क्यों होती है? उनको सुधरना चाहिए ऐसा क्यों कहा जाता है? आत्मज्ञान के अभाव में आदमी सब तरफ भटक रहा है। जितना अंधविश्वास है दुनिया में धर्म के नाम पर सब आत्मज्ञान के अभाव में हैं। अंधविश्वास का मतलब ही है कि हमें कुछ न करना पड़े, थोड़ी पूजा-प्रार्थना से हमें गति-मुक्ति मिल जाये।

लेकिन जो सच्चा आत्मज्ञानी पुरुष होगा वह कभी ऐसा नहीं कहता है। सद्गुरु कबीर साहेब बार-बार यह कहते हैं—

करु बहियां बल आपनी, छाँड़ बिरानी आस।

जाके आंगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥

(बी.सा. 277)

आत्मज्ञानी पुरुष यही कहेगा कि अपने बाहुबल का भरोसा रखो। बाहुबल का भरोसा रखने का अर्थ है—अपने कदमों पर खड़ा होना, तृप्त होना। उधारी ले-लेकर कब तक कोई जीवन जीयेगा, उधारी का सौदा कब तक काम आयेगा। नगद ज्ञान चाहिए। नगद

क्या और कौन है? नगद है सब समय हाजिर हुजूर अपना आपा, अपना स्वरूप। बाकी बाहर सब उधारी का है।

कितना प्रिय से प्रिय क्यों न हो, एक दिन उससे वियोग होना पक्का है। पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी की कविता का अंश है—“कितने लालों को पाले पर सूना ही आंचल है। जग को समेटकर रख ले किसमें इतना संबल है।” प्रिय से प्रिय का वियोग होना है और सबसे अधिक प्रिय कौन है? यह शरीर ही सबसे ज्यादा प्रिय और सबसे नजदीक है जो निरंतर साथ बना हुआ है। जन्म से लेकर आज तक कितने लोग मिले, कितने पदार्थ मिले, क्या-क्या खाये-पीये और कहां-कहां गये, सब छूट गया। लेकिन जन्म से लेकर आज तक एक क्षण के लिए भी शरीर का वियोग नहीं हुआ। शरीर निरंतर साथ बना हुआ है। यह शरीर भी एक दिन छूट जाने वाला है। जब शरीर छूट जाने वाला है तब और साथ कौन देगा? सबसे निकट तो शरीर है और यही छूट जाने वाला है।

कहीं भी मोह बनाये तो वह उधारी का सौदा होगा। यदि कहीं मोह बनायें तो अपने को धोखा देना होगा, अपने को पीड़ा देना होगा। हमारे मन में दुख का, पीड़ा का, वियोग का अनुभव क्यों होता है? क्यों हम भटक रहे हैं? एक ही कारण है, मोह बना-बनाकर। मोह के अलावा दुख और कहीं है नहीं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजै बहु सूला॥

सारी मानसिक व्याधियों का, पीड़ाओं का, भवबंधन का मूल मोह है। मोह का मतलब है आकर्षण, चिपकाव की भावना। किसी को कितना भी चिपका लो अंत में उसका वियोग होना ही है।

इसलिए व्यवहार के क्षेत्र में यथोचित व्यवहार करें। जो बन सके पूरी सेवा करें। अपनी ओर से जहां सेवा का अवसर मिले कहीं चूकना नहीं चाहिए। अपने कर्तव्य का पालन पूरा-का-पूरा करते रहना चाहिए। लेकिन यह सोचना चाहिए कि एक दिन इन सबका और मेरा वियोग होना पक्का है। उस वियोग की स्थिति को

देखते रह जायें, पहले से मन में समझ लें तो वियोग होने पर दुख नहीं होगा।

कोई संबंध स्थायी नहीं रहा है। हर घर का मालिक मरता चला गया है और मरता चला जायेगा। जो लोग हमसे मिले हैं वे छूटते चले गये हैं और हम भी एक दिन दुनिया से विदा हो जायेंगे। यह सोचें कि आजकल में मुझे इस दुनिया को छोड़कर जाना है। जब मुझे जाना है तब किससे मैं मोह करूं।

एक संत ने लिखा है—सड़क से किसी की अर्थी को गुजरते हुए देखकर यह मत कहना कि बेचारा दुनिया से चला गया। किन्तु यह सोचना कि एक दिन इसी सड़क से मेरी भी अर्थी गुजरेगी और लोग सड़क पर खड़े होकर ऐसे ही तमाशा देखेंगे।

जो हकीकत है उसे कौन बदल सकता है। किसी में भी सामर्थ्य नहीं है। समझ पायें या न समझ पायें लेकिन यह हकीकत है कि हमारा हर कदम हमें मौत के नजदीक ले जा रहा है। कौन-सा कदम आखिरी कदम होगा, कह नहीं सकते। धरती पर जितने कदम रख रहे हैं मौत के नजदीक पहुंचते चले जा रहे हैं।

इसीलिए अभी से सावधान होना है। जैसे कोई आदमी जेल में बंद हो और उसे कह दिया गया हो कि तुम्हारी दस साल की सजा होगी। वहां बैठकर आदमी एक-एक दिन गिनता है कि इतने दिन बीत गये, इतने दिन बाकी रह गया है। जब अंतिम दिन आता है तब उसे लगता है कि आज जेल से छूट जाऊंगा। उसके मन में कितनी खुशी होती है। इसी प्रकार से यह समझें कि हम लोग भी इस शरीर और संसार रूपी जेलखाने में आ गये हैं।

जेलखाना में आदमी कब जाता है? जब गलत काम करता है तब। हम लोग भी कोई गलत काम किये हैं। गलत काम करना क्या है? जो अपना नहीं है उसे अपना मानना यह गलत काम है। सद्गुरु कबीर ने कहा है—‘मानुष जन्म चूकेहु अपराधी’ यहां सद्गुरु कबीर ने मनुष्य को अपराधी शब्द से संबोधित किया है। अरे अपराधी! इस जन्म को तुम चूक रहे हो। साहेब लोगों को अपराधी क्यों कहते हैं? क्या लोग अपराधी हैं?

भौतिक दृष्टि से तो अपराधी नहीं हैं लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से सब लोग अपराधी हैं।

जो अपना नहीं है उसे अपना मानना यह अपराधी होना है। सभी लोग यही अपराध कर रहे हैं। सबका शरीर मिट्टी, पानी, आग, हवा और आकाश इन पांच तत्वों से बना हुआ है। पंचायती है यह शरीर। और हम कहते हैं कि यह शरीर हमारा है। यह अपराध ही तो हुआ। दुनिया की सारी वस्तुएं जड़ प्रकृति का खेल है, पसारा है। उसको अपना मानते हैं तो अपराध ही हुआ। संसार में कहीं मन फंसाना, संसार में कहीं मोह करना, संसार की किसी वस्तु को अपना मानना यही अपराध है। और इसी अपराध के कारण हम शरीर-संसार रूपी जेलखाने में आये हुए हैं।

जब तक यह अपराध करते रहेंगे, अपने आप के अलावा, अपने स्वरूप के अलावा कहीं भी अपने मन को फंसाये रखेंगे तो जेलखाना में सदैव बंद ही रहेंगे। जेल में रहने वाले व्यक्ति को खुशी नहीं होती है लेकिन हमें इस शरीर-संसार रूपी जेलखाने में रहने पर खुशी होती है। दुख पर दुख भोगते हैं लेकिन फिर भी इसे छोड़ना नहीं चाहते। शरीर के प्रति इतनी प्रियता है कि आदमी मरने का नाम सुनकर भयभीत हो जाता है। क्यों? अत्यंत प्रगाढ़ मोह, अत्यंत अविद्या के कारण। जैसे घोर अंधियारी रात में कुछ सूझता नहीं है आदमी को ऐसे ही अविद्या इतनी मजबूत हो गयी है कि कोई कह दे तुम्हें इस परिवार को, संसार को छोड़कर जाना है तो लोग रुष्ट हो जाते हैं। लेकिन कोई कहे या न कहे, जाना तो पक्का है। इसलिए हकीकत को समझें और हकीकत को समझते हुए संसार में रहते हुए अपने मन को इस संसार से ऊपर उठाकर रखें।

जैसे पथिक धर्मशाला में जाता है तो धर्मशाला में रहते हुए भी अपने मन को उठाकर रखता है। सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—

जाको जाना उत घरा, सो क्यों जोड़े मीत।

जैसे पर घर पाहुना, रहे उठाये चित॥

पहुना जब किसी के यहां जाता है तो उसकी बड़ी सेवा होती है लेकिन पहुना अपने चित्त को उठाकर रखता है। ऐसे ही इस संसार में पहुनाई करने के लिए

आ गये हैं। सोचें कि अब जाना है, अब जाना है। जाने के दिन को जो याद कर लेगा उसके द्वारा कभी कोई पाप नहीं होगा। कहीं वह मोह नहीं करेगा, कहीं वह अपने मन को फंसायेगा नहीं।

इसलिए हकीकत को समझें और समझकर मोह त्यागकर आत्मस्थित हों। आत्मस्थिति के अलावा कल्याण का, शांति का कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

हमें यह जीवन मिला हुआ है तो हम कुछ और कर सकें या न कर सकें, व्यावहारिक क्षेत्र में इतना ध्यान जरूर रखें कि हमारे द्वारा जानबूझकर कभी किसी को कोई पीड़ा न मिले। जो बन सके सेवा करें। जहां तक हमारी दृष्टि जाती है, जो लोग हमें दिखाई पड़ते हैं यह समझें कि सब मेरे हैं। सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है—‘घाव काहि पर घालो, जित देखों तित प्राण हमारो’ चोट किसे पहुंचाऊं, जहां देखता हूं सब मेरे प्राणप्रिय हैं, मेरे परिवार के लोग हैं। अपने परिवार के लोगों को कोई चोट नहीं पहुंचाता है।

जिसे देखें, समझें कि सब मेरे हैं, इसलिए जीयें इस तरह कि सब मेरे हैं लेकिन मन में भाव ऐसा रखें कि कोई मेरा नहीं है, मैं नितांत अकेला हूं। जीयें इस तरह कि सब मेरे हैं और मरें इस तरह कि कोई मेरा नहीं है। सबसे प्रेम का व्यवहार लेकिन सबसे अनासक्त रहें। प्रेम में स्वर्ग है और अनासक्ति में मोक्ष है।

इसलिए व्यवहार का जो काम है, सेवा है उसे यथावत करें लेकिन यथावत करते हुए समझें कि इस दुनिया को एक दिन छोड़कर जाना है और जैसे ही आंखें बंद हुईं, सारा संसार सदा के लिए छूट जायेगा, सदैव छूटता रहेगा। नहीं छूटने वाला कोई यदि है तो हमारा अपना आत्मस्वरूप है, हमारी अपनी चेतना है। और हमें उसका ही ज्ञान नहीं है, इसीलिए भटक रहे हैं और दुख पर दुख पा रहे हैं।

बाहर से मुड़कर अपने आपका ज्ञान प्राप्त करें और सबसे मन को हटाकर आत्मस्थित करें। जब तक जीवन रहेगा आत्मशांति-आत्मसंतोष का अनुभव करते रहेंगे और साथ-साथ शरीर छूटने के पश्चात सदा के लिए दुखों से मुक्त हो सकेंगे।

—धर्मेन्द्र दास

बी जक चिंतन

दैवासुर संपदा

शब्द-111

है कोई गुरु ज्ञानी, जगत उलटि बेद बूझै ॥ 1 ॥
 पानी में पावक बरै, अन्धहि आँखि न सूझै ॥ 2 ॥
 गाई तो नाहर खायो, हरिन खायो चीता ॥ 3 ॥
 काग लंगर फाँदि के, बटेर बाज जीता ॥ 4 ॥
 मूस तो मंजारि खायो, स्यार खायो श्वाना ॥ 5 ॥
 आदि को उदेश जाने, तासु बेस बाना ॥ 6 ॥
 एकहि दादुर खायो, पाँचहिं भुवंगा ॥ 7 ॥
 कहहिं कबीर पुकारि के, हैं दोऊ एकै संग ॥ 8 ॥

शब्दार्थ—गुरु ज्ञानी= श्रेष्ठ ज्ञानी। उलटि= घूमकर।
 बेद= वेद, ज्ञान, निजात्मतत्त्व। गाई= गाय। नाहर= सिंह।
 काग= कौआ। लंगर= एक तेज हिंसक जानवर। फाँदि
 के= कूद कर। बटेर= एक साधारण पक्षी। बाज= प्रसिद्ध
 शिकारी बक्षी। मंजारि= बिल्ली। आदि= मूल।
 उदेश= उद्देश्य, लक्ष्य, इष्ट, प्रयोजन। बेस बाना= धार्मिक
 पोशाक, भक्ति-साधुत्व के चिह्न। दादुर= मेढक।
 भुवंगा= सांप।

भावार्थ—है कोई श्रेष्ठ ज्ञानी, जो संसार से लौटकर
 ज्ञानतत्त्व एवं निजस्वरूप को समझे ! ॥ 1 ॥ पानी में आग
 जल रही है, परन्तु आंख फूटी होने से वह नहीं दिखाई
 देती। अर्थात् स्वभावतः शीतल आत्मा में कामादि की
 आग जल रही है, परन्तु इसे विवेकहीन नहीं
 समझता ॥ 2 ॥ यहां तो सब कुछ उलटा हो गया है, गाय
 ने सिंह को खा लिया है, हिरन ने चीते को खा लिया है,
 कौए ने कूदकर लंगर को धर दबोचा है, बटेर ने बाज
 पक्षी पर विजय पायी है, चूहे ने तो बिल्ली को खा लिया
 और गीदड़ ने कुत्ते को खा डाला है ॥ 3-5 ॥ उसी के
 धार्मिक वेष-बाना शोभा देते हैं जो अपने मूल उद्देश्य को
 समझता है तथा उस दिशा में प्रयत्नरत है ॥ 6 ॥ एक
 मेढक ने पांच सांप खा लिये ॥ 7 ॥ कबीर साहेब लोगों

को हांक देकर और बुलाकर कहते हैं कि ये दोनों पक्ष
 एक साथ रहते हैं ॥ 8 ॥

व्याख्या—मानो कोई भीड़ हो। कबीर साहेब वहां
 पहुंच गये हों और उन्होंने अचानक भीड़ से पूछ लिया
 हो—इसमें है कोई श्रेष्ठ ज्ञानी, जो जगत से उलटकर,
 सांसारिकता से लौटकर वेद को समझता हो? ज्ञानतत्त्व
 एवं निजस्वरूप का विवेक करता हो? वस्तुतः श्रेष्ठ ज्ञानी
 वही है जो जगत से लौटकर वेद को समझता हो। सद्गुरु
 कबीर वेद का आदर करते हैं। वेद कहते हैं ज्ञान को।
 जीव का स्वरूप ही ज्ञान है। संसार में दो ही तत्त्व हैं एक
 जगत तथा दूसरा वेद। जगत जड़ है और वेद चेतन है।
 जब तक जगत से नहीं लौटा जायेगा तब तक वेद नहीं
 समझा जा सकता। जो व्यक्ति जगत में डूबा है वह वेद
 को नहीं समझ सकता। संसारी बुद्धि वाले जिस राग-रंग
 में आनंद मानते हैं, उससे विमुख होकर ही वेद को, ज्ञान
 को, निजस्वरूप को समझा जा सकता है। आप समुद्र पर
 चले जाइये। उसके तट पर खड़े हो जाइये। थल की तरफ
 पीठ देकर जल की तरफ मुख कीजिए, आपको केवल
 जल दिखाई देगा। परन्तु जब आप जल की तरफ पीठ
 करके थल की तरफ देखेंगे तो केवल थल दिखाई देगा।
 हमारी यही दशा है। यदि हम सांसारिकता की तरफ देखते
 हैं तो वेद ओझल हो जाता है। सांसारिकता में मन रखने
 वाला अपनी चेतना में नहीं लौट सकता। जिसका मन
 अपनी चेतना में लीन है वह सांसारिकता से निश्चित ही
 विमुख होगा। एक काल में एक साथ दोनों नहीं होंगे।
 अतएव सद्गुरु कबीर कहते हैं कि वही श्रेष्ठ ज्ञानी है
 जिसने सांसारिकता से, दुनिया के राग-रंग से पीठ दे दी
 हो और अपने वेदस्वरूप में-चेतनस्वरूप में निरन्तर लीन
 हो।

“पानी में पावक बरै, अन्धहि आँखि न सूझै।” पानी
 में आग जल रही है, परन्तु फूटी आंखों से यह दिख नहीं
 पड़ती। मनुष्य की अपनी चेतना, अपनी आत्मा स्वरूपतः
 शीतल, शांत एवं निर्द्वंद्व है, परन्तु उसमें काम की आग
 जल रही है, क्रोध की, लोभ की, मोह की, चिंता की,
 शोक की और राग-द्वेष की आग जल रही है। यह कितना

दुखद है कि जो स्वभाव से ही शीतल है वह अपने स्वरूप के अज्ञान तथा तुच्छ विषयों के प्रलोभन में पड़कर मानसिक आग में जल रहा है। जीव संसार में आकर एक-एक गलत आदत का मैल अपने जीवन में लगाता जाता है और उसकी आग में जलता जाता है। तुम ध्यान दो, यदि तुमने बीड़ी पीने की आदत न बनायी होती तो उसको लेकर तुम्हें परेशानी क्यों होती? यदि तुम काम-कीचड़ में न पड़े होते तो इच्छा का उद्वेग तथा सांसारिकता का बोझ तुम्हारे सिर पर क्यों पड़ता? यदि तुम अमुक से वैर-विरोध न करते तो तुम्हें द्वेष की आग में क्यों जलना पड़ता? हम तो अपने अविवेक से न हुए दुखों को बनाते हैं। जो दुख हमारे जीवन में नहीं हैं उन्हें हम अपने अज्ञान से पैदा करते हैं। संसार के सारे दुख हमारे पैदा किये हुए हैं। जीव का मौलिक स्वरूप तो निर्मल है, शीतल है, परंतु उसे अपने दिव्य स्वरूप का ज्ञान नहीं है। इसलिए वह साधारण बुद्धि अपनाकर एवं सांसारिकता में लिपटकर अपने जीवन में दुख बनाता है। स्वभावतः शीतल जीव दुखों की आग में जल रहा है, फिर भी हमारी आंखें फूटी हैं और हम देख नहीं पा रहे हैं कि यह हमारे जीवन में क्या हो रहा है। हमें अपनी स्वभावगत शीतलता, स्वच्छता, असंगता एवं निर्लेपता का ज्ञान होना चाहिए और संसार के कूड़े-कचड़े से हटना चाहिए जो हमारे जीवन में न हुए दुख उत्पन्न करते हैं। सद्गुरु कहते हैं कि अरे अंधे! पानी में आग जल रही है। लोग भले कहें कि यह कबीर की उलटवांसी है, क्योंकि पानी में आग जल ही नहीं सकती। साहेब कहते हैं कि जल तो रही है; परन्तु जब तुम्हारी आंखें ही फूटी हैं, तब तुम इसे देख भी कैसे सकते हो! तुम इसे देख लेते तो आज तक दुखों की आग में जलते ही क्यों! तुम्हारे मूल स्वरूप में तो दुख की गंध भी नहीं है, परन्तु दुनियाभर का लीबड़ लगाकर तुम रात-दिन दुखों में कितना जल रहे हो इसका तुम्हें होश-हवास ही नहीं है।

शीतल पानी में आग जल रही है। जो जीव स्वभावतः शीतल है वह अपने अज्ञान से संसार की तनिक-तनिक-सी बातों को लेकर तथा तुच्छ चीजों में उलझकर क्षण-क्षण पीड़ित हो रहा है। इस विपरीतता को

लेकर यहां कबीर साहेब उलटवांसी भरे कई उदाहरण पेश करते हैं। वे कहते हैं कि यह तो मानो ऐसा हुआ कि गाय ने सिंह को खा लिया हो, हिरन ने चीते को, काग ने लंगर को, बटेर ने बाज को, चूहे ने बिल्ली को, गीदड़ ने कुत्ते को तथा एक मेढक ने पांच सांपों को खा लिया हो। इन सारे उदाहरणों में एक ही बात है कि कमजोर पक्ष ने बलवान पक्ष को खा लिया है। गाय, हिरन, कौआ, बटेर, चूहा, गीदड़ तथा मेढक कमजोर पक्ष के हैं तथा इनके विपक्ष में रहे हुए सिंह, चीता, लंगर, बाज, बिल्ली, कुत्ता तथा सांप बलवान पक्ष के हैं। संसार में सिंह, चीता, लंगर, बाज, बिल्ली, कुत्ता तथा सांप क्रमशः गाय, हिरन, कौआ, बटेर, चूहा, गीदड़ तथा मेढक को मारते हैं, परन्तु यहां उलटा हुआ है। यहां गाय आदि के कमजोर पक्ष ने ही सिंह आदि के बलवान पक्ष को धर दबोचा है।

इसका अभिप्राय यह है कि हमारे हृदय में दुर्गुण तथा सद्गुण दोनों के दल रहते हैं। स्वभाव से दुर्गुण दुर्बल पक्ष है और सद्गुण सबल पक्ष। किन्तु दुर्बल पक्ष ने ही सबल पक्ष को धर दबोचा है। दुर्गुण दुर्बल तथा सद्गुण सबल कैसे हैं? यह साफ जाहिर है। काम और विचार को लें। काम अंधकाररूप है और विचार प्रकाशरूप। काम की दशा में आदमी कुछ क्षण रह सकता है, जीवनभर नहीं। वह जितने क्षण काम में रहता है उतना क्षण भी कितना उत्तेजनापूर्ण, भावुकतापूर्ण, मलिन, घृणित एवं अस्त-व्यस्त होता है यह सर्वविदित है। इसके विपरीत विचार है। विचार में पूरा जीवन रहा जा सकता है। हम विचार की अवस्था में निष्काम, संतुष्ट, स्थिरमति एवं निर्द्वंद्व होते हैं। जब तक विचार रहता है, काम आ ही नहीं सकता। विचार इतना सबल है कि उसके सामने काम टिक नहीं सकता। परन्तु विचार न रहने पर काम ही बलवान हो जाता है। अतः लगता है कि मानो काम ने ही विचार को नष्ट कर दिया है। जब घोर अंधकार रहता है तब लगता है कि इस अन्धकार ने ही प्रकाश का नाश कर दिया है, जबकि प्रकाश का अभाव मात्र अंधकार है। प्रकाश सकारात्मक है और अंधकार नकारात्मक। प्रकाश हो तो अन्धकार रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह तो अन्धकार

इसलिए रहता है क्योंकि प्रकाश उपस्थित नहीं है। जहां प्रकाश आया कि अन्धकार गायब हुआ। इसी प्रकार काम-वासना इसलिए है कि विचार मन में उपस्थित नहीं है। जहां विचार आया कि काम समाप्त हुआ। इसी प्रकार क्रोध, तृष्णा, राग-द्वेष, मोह आदि इसलिए हैं कि क्षमा, संतोष, समता, विवेकादि मन में नहीं हैं। जहां क्षमा, संतोष, समता, विवेकादि मन में विद्यमान हुए कि क्रोध, तृष्णा, राग-द्वेष, मोह आदि गायब हुए। ये कामादि दुर्गुण जो विचारादि के अभाव मात्र से अपनी सत्ता रखने वाले मूलतः दुर्बल हैं, लगते हैं कि सबल हैं। लगता है कि कामादि ने विचारादि को नष्ट कर दिया है, परन्तु बात ऐसी है नहीं। वस्तुतः हम विचार, क्षमा, संतोष, समता, विवेकादि मन में नहीं जगाते, तो काम, क्रोध, तृष्णा, राग-द्वेष, मोह आदि जगकर मन में छा जाते हैं।

वस्तुतः कामादि दुर्गुण पक्ष तथा विचारादि सदगुण पक्ष—दोनों एक साथ मनुष्य के हृदय में रहते हैं। इस शब्द की अंतिम पंक्ति में सदगुरु ने यही कहा है “कहहिं कबीर पुकारि के, है दोऊ एकै संगी।” मनुष्य की स्वतन्त्रता है, वह चाहे तो कामादि विकारों का स्मरण कर उन्हें ही मन में बढ़ाये, अथवा विचारादि को बढ़ाये। ये दैवासुर संपदाएं मनुष्य के मन में रहती हैं। मनुष्य चाहे दैवी-संपदा बढ़ा ले और चाहे आसुरी-संपदा बढ़ा ले। दोनों के फल प्रत्यक्ष हैं। आसुरी-संपदा का फल नरक है और दैवी-संपदा का फल कल्याण है।

इस शब्द में आये हुए गाय, हिरन, कौआ, बटेर, चूहा, गीदड़ तथा मेढक के और इसके विरोधी सिंह, चीता, लंगर, बाज, बिल्ली, कुत्ता तथा सांप के कुछ विशेष अर्थ किये जायें या नहीं, कुछ अन्तर नहीं पड़ता। सहज अर्थ यही है कि गाय आदि दुर्बल पक्ष कामादि आसुरी-संपदा के हैं तथा सिंह आदि सबल पक्ष दैवी-संपदा के हैं। मनुष्य की बुद्धि विपरीत होने से दुर्बल आसुरी-संपदा ने ही सबल दैवी-संपदा को ढक-जैसा लिया है। परन्तु जो यह समझ जाता है कि आसुरी-संपदा अंधकार मात्र है जो दैवी-संपदारूपी प्रकाश के सामने

नहीं टिक सकती, वह शीघ्र ही दुर्गुणों से मुक्त होकर सदगुणों में विराजता है।

यदि गाय तथा सिंहादि के विशेष अर्थ किये जायें तो इस प्रकार किये जा सकते हैं—

गाय—अविद्या	सिंह—ज्ञान
हिरन—चंचलता	चीता—शांति
काग—वासना	लंगर—विवेक
बटेर—उत्साहहीनता	बाज—उत्साह
मूस—भय	बिल्ली—निर्भयता
गीदड़—अविवेक	श्वान—विवेक
मेढक—विषयासक्ति	सर्प—पांच ज्ञानेन्द्रियां

इन गाय, सिंह आदि के अर्थ दूसरे मनोभावों में भी किये जा सकते हैं, परन्तु इतना साफ है कि गाय आदि दुर्बल पक्ष के प्राणियों के रूपक आसुरी-संपदा के लिए हैं तथा सिंह आदि सबल पक्ष के प्राणियों के रूपक दैवी-संपदा के लिए हैं। सातवीं पंक्ति में है कि एक मेढक ने पांच सांपों को खा लिया। ज्ञानेन्द्रियां मानो सांप हैं। ये विवेकयुक्त रहें तो विषयासक्ति के ध्वंस में सहायक बन सकती हैं, परन्तु ऐसा न होने से विषयासक्ति ही पांचों ज्ञानेन्द्रियों को पतित कर देती है।

इस शब्द की छठीं पंक्ति में सदगुरु ने एक विशेष महत्त्व की बात कही है “आदि को उद्देश जाने, तासु बेस बाना।” जो आदि का उद्देश्य जानता है उसके वेष-बाना सफल हैं। ‘आदि’ शब्द के मुख्य दो अर्थ हैं। किसी कालखंड के आरम्भ को आदि कहते हैं तथा मूल को आदि कहते हैं। यहां कालखंड का आरम्भ अर्थ नहीं है, किन्तु ‘मूल’ अर्थ है। “आदि को उद्देश” है मूल उद्देश्य। मनुष्य का मूल उद्देश्य है दुखों से अत्यन्त निवृत्ति। अतएव उक्त पंक्ति का अर्थ है कि जो साधक दुखों से अत्यन्त निवृत्तिरूप अपने जीवन के मूल उद्देश्य को समझता और उस दिशा में चलता है, उसी के धार्मिक वेष-बाना सफल हैं।

हर प्राणी दुखों से छूटना चाहता है। मानव-प्राणी विवेक-साधनसंपन्न होने से दुखों से छूटने में समर्थ है।

दुख उत्पन्न होते हैं अपने स्वरूप के अज्ञान तथा दोषों से। जब मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान होता है और अपने मन, वाणी तथा शरीर के दोषों को छोड़ने लगता है, तब वह क्रमशः दुखों से मुक्त होने लगता है। दुखों से पूर्ण निवृत्ति तब होती है जब दोषों की पूर्ण निवृत्ति हो जाती है। जो साधक अपने मन में यह सदैव ध्यान रखता है कि मुझे पूर्ण दुखरहित होना है वह अपने जीवन के एक-एक दोष को निकाल-निकालकर फेंकता है। अपने मूल उद्देश्य—दुखनिवृत्ति को समझने वाला कभी दूसरों के दोषों को देखने की चेष्टा नहीं करता। वह तो सदैव यह ध्यान रखता है कि मेरे दोष दूर हों। मेरे बनाये दोषों को छोड़कर मुझे अन्य कोई दुख दे ही नहीं सकता। अतएव जो अपने मूल उद्देश्य को सदैव अपने मन के सामने रखता है, वह इधर-उधर न उलझकर अपने भीतर बने दोषों को निकालता है तथा नये दोषों से सावधान रहता है। सद्गुरु कबीर कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के ही वेष-बाना एवं धार्मिक चिह्न धारण करना सफल है। अन्यथा वेष का स्वांग कोई भी बना सकता है जिससे कोई लाभ नहीं।

इस प्रकार इस शब्द में सद्गुरु ने सांसारिकता एवं विषयासक्ति से लौटकर वेद को, ज्ञान को एवं निजस्वरूप को समझने की प्रेरणा दी है और बताया है कि तुम स्वभाव से ही शीतल एवं कल्याणमय हो, केवल भूल से तुम्हारे मन में दोषों और दुखों की आग जल रही है। दुर्बल दुर्गुण पक्ष ने सबल सद्गुण पक्ष को दबा-जैसा दिया है। परन्तु यदि तुम अपने मूल उद्देश्य को समझो तथा अपने आप में जग जाओ तो कृतार्थ हो जाओगे। सार यह है कि तुम्हें जगत् से लौटकर निजतत्त्व को समझना चाहिए।

जीवन की जो इच्छाएं, नहीं पूर्ण किसी की होतीं।
जो जीत लिया इच्छा को, क्या कमी उसे कुछ होती ॥
वासनासक्त का होना, यह जीवन का बन्धन है।
वासना हीन सम्यक् हो, जीवन का निर्बन्धन है ॥
—सद्गुरु जी अभिलाष साहेब जी

दोहे

रचनाकार—राधाकृष्ण कुशवाहा

अहंकार अज्ञान में, भटक रहा बेहाल।
ज्ञान नेत्र देकर हमें, गुरुवर किए निहाल ॥ 1 ॥
मन चक्र अति बक्र है, बिरला पावे थाह।
सद्गुरु सन्त की शरण में, मिलती इसकी राह ॥ 2 ॥
अरे मूढ़! क्यों सन्त से, बोल रहे इतराय।
क्या कबहूँ दरिया कोई, सिन्धु की समता पाय ॥ 3 ॥
होत मनुज गुण से बड़ा, फैशन से क्या काम।
सन्त लंगोटी धारते, राजा करें सलाम ॥ 4 ॥
कहत सुनत छूटत कलुष, जाय करें सत्संग।
पता नहीं किस सबक से, बदले जीवन रंग ॥ 5 ॥
आत्मा का आनन्द ही, है कस्तूरी गंध।
जिसे ढूँढता जीव मृग, बाहर होकर अन्ध ॥ 6 ॥
कौन तत्त्व वह बूझिए, बढ़े न होवे न्यून।
ज्यों ही तन को त्याग दे, मान हो जाए शून्य ॥ 7 ॥
झुकने पर अति नीच भी, बनता दानी रूप।
जब झुकती है ढेकली, देता पानी कूप ॥ 8 ॥
राम रहीम दोउ एक हैं, केवल नाम का फेर।
ज्यों हिन्दी में जल कहें, आब अरबी टेर ॥ 9 ॥
साधन के रहते हुए, श्रान न बनना तुम।
इज्जत को ढाँके नहीं, ऊपर ताने दुम ॥ 10 ॥
बजे बधाई जासु की, तासु बजे गम ढोल।
काल पीसता सबन को, कौन अहं की बोल ॥ 11 ॥
मान बड़ाई पूज्यता, पा फूले नर जोय।
आज नहीं तो कल पतन, उसका निश्चित होय ॥ 12 ॥
सभी स्वर्ग को चाहते, करते नरक का काम।
कच्चे घर के माल से, बने न पक्का धाम ॥ 13 ॥
काम चक्र अति वक्र है, शक्र भी छूटे नाहि।
नारद मुनि औघट फँसे, विश्व सुन्दरी माहि ॥ 14 ॥
जो तराश निज का किया, निखरा उसका रूप।
पत्थर घिस पिण्डी बना, शीश झुकावें भूप ॥ 15 ॥

अच्छा होता है ज्ञानपरक बातें कहना एवं सुनना

प्रस्तुति—डॉ. रणजीत सिंह

1. समाज के सामने नकली चेहरे की बजाय असली चेहरा सामने लाने वाला महान होता है।
2. समस्त अर्जित ज्ञान बिना आचरण में उतारे एक क्रीड़ा है।
3. जितना अधिक आरामतलब होंगे, मौत उतनी ही तेजी से वार करेगी।
4. देह में रहते वासना का त्याग निर्वाण है और वासनाहीन आत्मा ने जब शरीर छोड़ दिया तो परिनिर्वाण है।
5. तड़क-भड़क की बजाय सादा जीवन उच्च विचार ज्यादा बेहतर है।
6. जैसे बुरी मुद्रा अच्छी मुद्रा को प्रचलन से हटा देती है ठीक वैसे ही बुरे लोग अपने निजी लाभ के लिए अच्छे लोगों को व्यवस्था से बाहर कर देते हैं।
7. अपने ऊपर ज्यादा से ज्यादा शासन करने वाला मनुष्य बेहतर समाज का निर्माण करता है।
8. लोगों में बुराइयां देखने की अपेक्षा अच्छाइयां देखना बेहतर है।
9. परावलम्बन की अपेक्षा स्वावलम्बन बेहतर है।
10. प्रतिरोध, पूर्वाग्रह, लोभ, ईर्ष्या, घृणा व घमण्ड आदि की अपेक्षा उदारचेता मनुष्य अच्छा है।
11. आप भगवान की भेंट-पूजा करके कुछ हासिल करना चाहते हैं लेकिन भगवान मानव सहित मानवेतर प्राणियों की भलाई के लिए बहुत कुछ चाहता है।
12. उपलब्धि हासिल करने में आयु मायने नहीं रखती है, इसीलिए अल्पायु वालों ने जो हासिल किया वह दीर्घायु वाले नहीं कर पाये।
13. दुर्घटना में वाहन क्षति की परवाह न कर जीवित मानव एवं मानवेतर प्राणियों की रक्षा करना चाहिए।
14. काम का बोझ इकट्ठा करने की बजाय उसे थोड़ा-थोड़ा करते रहना ज्यादा अच्छा होता है।
15. अच्छी जिंदगी निरर्थक फैसलों से नहीं सार्थक फैसलों से चलती है।
16. असफलता के आगे घुटने टेकने की बजाय उससे सबक लेकर आगे बढ़ते रहने का नाम सफलता है।
17. समस्याओं को कोसने की बजाय उनका समाधान करने वाला महत्त्वपूर्ण होता है।
18. गॉड फादर की बजाय अपने कार्य व व्यवहार के बलबूते जाना जाने वाला इंसान बेहतर होता है।
19. मानव की ज्येष्ठता एवं श्रेष्ठता का मापदंड उसका वंश नहीं बल्कि उसके मानवीय गुण, कार्य एवं व्यवहार हैं।
20. थोड़ी-बहुत बुराई के कारण कोई मनुष्य अधम नहीं माना जा सकता है।
21. मास्टर, डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, नेता, शासक, प्रशासक, व्यापारी बनने की अपेक्षा मनुष्य का मनुष्य बनना उसकी सर्वश्रेष्ठता है जिसे ग्रामीण अंचलों में मनई बनना कहते हैं।
22. धन से गरीब लेकिन आचरण-सद्गुणों से धनी सर्वश्रेष्ठ होता है।
23. उम्रदराज झूठ बोलने वाले ब्राह्मण की अपेक्षा सत्य बोलने वाला एवं ईमानदार बालक श्रेष्ठ होता है।
24. अकर्मि मनुष्य की अपेक्षा कर्मशील मनुष्य ज्यादा अच्छा होता है।
25. चरित्रहीन ब्राह्मण की अपेक्षा चरित्रवान शूद्र अच्छा होता है।
26. वंश, जाति, उपजाति, कुल, गोत्र व क्षेत्र की बजाय योग्यता व श्रेष्ठता को महत्त्व देने वाला महत्त्वपूर्ण होता है।
27. किसी महापुरुष का नाम जपने की अपेक्षा उस जैसा बनना महत्त्वपूर्ण होता है।
28. जरूरत देखकर बिना मांगे देने वाला महान होता है।

29. संकट के समय बिना हानि-लाभ का विचार किये निस्स्वार्थ भाव से मदद करने वाला निश्चय ही श्रेष्ठ पुण्य का भागी होता है।

30. घर में धार्मिक किताब रखना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उसे पढ़कर चरित्र निर्माण करना आवश्यक है।

31. किसी के दिल को दुखाने वाला काम नहीं करना चाहिए।

32. पहले भागीदारी फिर हिस्सेदारी अर्थात् पहले कर्तव्य तत्पश्चात् अधिकार की बात करनी चाहिए।

33. इतने मानवोपयोगी आविष्कारों के बाद भी मानवों के दुखी होने का कारण यह है कि महामानव बनने के कारखाने नहीं लगाये गये।

34. आत्मा सबसे बड़ा गुरु है, बाहरी गुरु तो उस गुरु का परिचय कराने वाले होते हैं।

35. जैसे किसान अपने खेतों से अच्छी उपज लेने के लिए समय पर खरपतवार की सफाई करता रहता है ठीक उसी तरह समय-समय पर अपने दोषों को सुधारने वाला सच्चा धर्मी है।

36. डॉक्टर मरीजों को देखता है न कि भले-चंगों को। ठीक इसी तरह दलितों, शोषितों, अभावग्रस्तों, जरूरतमंदों एवं गरीबों की मदद की जानी चाहिए न कि धनिकों की।

37. धर्म व्यक्तिगत कर्तव्यों और सामाजिक उत्तरदायित्वों के आदर्शनिष्ठ निर्वहन को कहते हैं।

38. अपने से बलिष्ठ को दण्ड देना व दुर्बल को क्षमा कर देना चाहिए।

39. पुण्य और कुछ नहीं उच्च स्तरीय कर्तव्यों का फलितार्थ है।

40. कर्तव्य के अलावा बाकी व्यसन माने जाते हैं।

41. मानवीय संवेदना का मंद होना प्रलयकाल है।

42. सिद्धि, स्वर्ग एवं मुक्ति वस्तुतः बाहर मिलने वाले वरदान नहीं अपितु मनःस्थिति के विकास के ही प्रतिफल हैं, वही मानव को ऋषि स्तर तक पहुंचाते हैं।

43. दुत्कारित, चीत्कारित एवं तिरस्कृत आत्मा का श्राप लगता है।

44. भगवान को खोजने के बजाय भगवान बनने वाला महत्त्वपूर्ण है। □

अब पुनः नहीं है मरना जी

रचयिता—हेमंत हरिलाल साहू

मरने से पहले मर चुका, अब पुनः नहीं है मरना जी
जग आश त्याग निश्चित भई, मौत से काहे डरना जी

कोई करे हंसी ठिठोली
कोई निन्दा अपमान करे।
जब अंतस में अमृत भरा है,
तब जगत जहर से क्यों डरे।
शुद्ध सात्विकी बाना लेकर,
कारज अपने करना जी॥

प्रारब्ध वश तन डोल रहा है,
पिंजड़े में मैना बोल रहा है।
हर पल हर घड़ी सोहं सोहं
रसना में मीत घोल रहा है।
अब कर विचार, तजि विकार,
भव सागर से तरना जी॥

ना कहीं आना ना कहीं जाना,
ना कुछ खोना ना कुछ पाना।
दुनिया के लालच में पड़कर
व्यर्थ समय ना कभी गंवाना।
भूत भविष्य की चिन्ता त्याग,
वर्तमान में विचरना जी॥

काम क्रोध मद मत्सर तज,
मोह निशा से जागो।
काट विषय विष की बेली,
मुक्ति पंथ में लागो॥
हेमन्त हो निर्माण सरल चित,
अहंकार न करना जी॥

सुखी जीवन की चाबी

लेखक—गुरुवेन्द्र दास

(गतांक से आगे)

सहनशीलता (धैर्य)—चिंता, तनाव, डिप्रेशन, अवसाद की अगली चाबी है सहनशीलता। जब से आदमी जन्म लेता है तब से परेशानी, दुख, कष्ट भी जन्म ले लेते हैं। जैसे सुबह होती है फिर शाम होती है, रात होती है, दिन होता है वैसे ही कभी अनुकूलता आती है तो कभी प्रतिकूलता आती है। यह प्रकृति का नियम है। जिंदगी में उतार-चढ़ाव का आना भी बहुत जरूरी है, क्योंकि आपको शायद ये पता होगा कि ई.सी.जी. में सीधी लाइन का मतलब मौत ही होता है। सहनशीलता के अभाव में आजकल रिश्ते रोटी की तरह हो गये हैं। जरा-सी आंच तेज क्या हुई जल-भुन कर खाक हो जाती है। आजकल घर-परिवार में लोग जरा-सी बात पर सहनशीलता खो देते हैं। जिसकी वजह से लंकाकाण्ड व महाभारत शुरू हो जाता है। दुर्योधन का उदाहरण तो जगत प्रसिद्ध ही है।

जब तक अहंकार दूर नहीं होगा तब तक जीवन खुशियों से भरपूर नहीं होगा। एक लेखक ने लिखा है—“पैर में से कांटा निकल जाये तो चलने में मजा आता है और मन में से अहंकार निकल जाये तो जीने में मजा आता है।” चलने वाले पैरों में कितना फर्क है, एक आगे है तो एक पीछे। पर न तो आगे वाले को अभिमान है न पीछे वाले का अपमान। क्योंकि उन्हें पता है कि पल भर में यह सब बदलने वाला है। जैसे-जैसे शिक्षा का स्तर बढ़ता जा रहा है, लोग शिक्षित होते जा रहे हैं वैसे-वैसे लोगों के अंदर अहंकार का ग्राफ भी बढ़ता जा रहा है।

पति-पत्नी, सास-बहू, पिता-पुत्र, भाई-भाई में कलह, तनाव का मुख्य कारण है धैर्य एवं सहनशीलता का अभाव।

एक बड़ा परिवार था। घर में करीब 100 सदस्य थे। सभी आपस में प्रेम, एकता, मधुरता से रहते थे। उस परिवार की सुकीर्ति राजा तक पहुंची। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचा, ऐसा कैसे हो सकता है कि

जिस घर में 100 सदस्य एक साथ रहते हों और आपस में कलह न हो, तू-तू, मैं-मैं न हो, सब आपस में प्रेम से रहते हों। एक दिन राजा ने उस परिवार के मुखिया से मिलने का मन बनाया। नियत समय पर राजा उसके यहां पहुंचे। राजा का खूब स्वागत-सत्कार हुआ। स्वागत-सत्कार के बाद राजा ने घर के मुखिया से पूछा—बाबा, आप इतने बड़े परिवार को कैसे चलाते हैं, क्या राज है कि सभी लोग आपस में बड़े ही प्रेम से रहते हैं। किसी में कोई कलह, तनाव, वैर नहीं। घर के मुखिया ने अपने कांपते हाथों से कलम-कागज लेकर लिखना शुरू किया। बाबा को लिखते-लिखते कुछ देर हो गई। राजा ने सोचा बाबा कोई खास बात बड़े विस्तार से लिख रहे होंगे। लिखने के बाद बाबा ने वह कागज राजा को दिया। राजा ने कागज को हाथ में लेकर देखा तो पूरे कागज पर एक ही शब्द लिखा था सहनशीलता, सहनशीलता, सहनशीलता। इसलिए संतों ने कहा है जिंदगी की किताब में धैर्य का कवर लगाना बहुत जरूरी है। क्योंकि वही सभी पन्नों को बांधकर रखता है।

सम्बंधों की बुनियाद रिश्तों से बनती है, रिश्तों की बुनियाद विश्वास से बनती है। जिसके मन में विष का (काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि) वास होगा उसके दिल में कभी विश्वास नहीं होगा। विश्वास में दरार पड़ते ही रिश्ते टूटते देर नहीं लगती है। जब तक रिश्ते मजबूत रहते हैं तो जो व्यक्ति आपके लिए अपनी जान तक देने को तैयार हो जाता है वही व्यक्ति रिश्ते में जरा-सी दरार पड़ते ही आपकी जान लेने को तैयार हो जाता है। रिश्ते चाहे जैसे हों जहां तक हो सके निभाना सीखें, तोड़ना नहीं। आपको पता है पानी चाहे जैसे हो, कितना भी गंदा क्यों न हो अगर प्यास नहीं बुझा सकता तो वह आग तो बुझा ही सकता है। किसी शायर ने कहा है—

“कैसे खिलेंगे रिश्तों में फूल,

अगर दूढ़ते रहेंगे दूसरे में भूल।”

सद्गुरु श्री विशाल साहेब ने कहा है—

सहै सबन के घात को, रहै अपन मन मार।
काज न छेकै अन्य को, आपन जानि सुधार॥

अपने मन को मार कर सबके घात-प्रतिघात को सहना सीखें। दूसरों के कर्म में विघ्न पैदा न कर ऐसा काम करें जिससे अपना तथा समाज का सुधार हो।

सद्गुरु कबीर साहेब ने कहा है “मनुवहि कहहु रहहु मन मारे, खिजुवा खीजि न बोले हो।” जब समय अनुकूल होता है तो सभी आदमी सहज, सरल होते हैं किंतु प्रतिकूल परिस्थिति पैदा होने पर भी सब कुछ सहकर जो सहनशील होता है, धैर्य नहीं खोता है वही व्यक्ति तो आगे चलकर महान होता है। प्रतिकूल परिस्थिति में ही तो आदमी की पहचान होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है “धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत काल परखिये चारी।” इसलिए जब भी प्रतिकूल परिस्थिति आये तो थोड़ा रुकें, विचार करें, फिर निर्णय लें। देखिये, ट्रैफिक नियमों में लिखा होता है सड़क क्रॉस करते समय थोड़ा रुकें, देखें, फिर चलें। यदि सड़क क्रॉस करते समय एक मिनट नहीं रुके और कहीं एक्सीडेंट में मर गये तो बात ही खत्म और कहीं सौभाग्य से बच गये तो अस्पताल में महीनों तक धैर्य रखना ही पड़ेगा। देखिये, एक अनगढ़ पत्थर जब किसी शिल्पकार के हाथ में पड़ता है तो शिल्पकार अपनी छेनी और हथौड़ी से पत्थर के खराब अंश को हटाकर एक सुन्दर मूर्ति का रूप देता है। फिर वही अनगढ़ पत्थर मंदिर में प्रतिष्ठित होकर भगवान के रूप में पूजा जाता है। एक शायर ने लिखा है—

“जिंदगी जीना इतना आसान नहीं होता।
बिना संघर्ष के कोई महान नहीं होता।
जब तक न पड़ते हथौड़े की चोट।
तब तक कोई पत्थर भगवान नहीं होता॥”

एक बार मंदिर में प्रतिष्ठित मूर्ति से मंदिर की सीढ़ी में लगे पत्थर ने पूछा—भगवन, आपमें ऐसी क्या विशेषता है, जिससे आपकी पूजा, आरती, वंदना होती है और मैं लोगों के पैरों तले कुचला जाता हूँ। सुनकर मूर्ति ने बड़ा सुन्दर जवाब दिया—भाई, तुम्हारा दुख-दर्द मैं समझ सकता हूँ। तुम ठीक कहते हो। दरअसल हम दोनों में फर्क इतना है कि तुम्हें जब शिल्पकार ने छेनी

और हथौड़ी से गढ़ना शुरू किया तो तुम छेनी और हथौड़ी की मार को सह न पाये, बिखर गये इसलिए आज तुम मंदिर की सीढ़ी में पड़े हो। लोगों के पैरों तले कुचले जा रहे हो और मैं शिल्पकार की छेनी और हथौड़ी के प्रहार को सह लिया, इसलिए आज भगवान के रूप में मंदिर में प्रतिष्ठित होकर लोगों द्वारा पूजा जा रहा हूँ। कोई भी स्थिति-परिस्थिति सदा एकरस रहती नहीं है। याद रखिये, सहनशीलता किसी हकीम से कम नहीं होती क्योंकि ये हौसले ही हैं जो हर तकलीफ में ताकत की दवा देते हैं। किसी शायर ने कहा है—

गम के अधियारे में दिल को न इतना बेकरार करो।

सुबह होगी सुबह का इंतजार करो।

आजकल चिंता, तनाव, डिप्रेशन में जितना बड़े व शिक्षित कहलाने वाले लोग हैं उतना अनपढ़ व गरीब लोग नहीं हैं। क्योंकि बड़े व शिक्षित कहलाने वाले आजकल समझते कम समझाते ज्यादा हैं, इसलिए वे सुलझते कम उलझते ज्यादा हैं। एक लेखक ने लिखा है—जिंदगी को खूबसुरत बनाने के लिए दो बातों पर ध्यान देना चाहिए। पहला—पार्ट आफ लाईफ और दूसरा—आर्ट आफ लाईफ। जीवन में सुख-दुख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, हानि-लाभ का होना पार्ट आफ लाईफ है अर्थात् ये जीवन के हिस्से हैं, आयेंगे ही। किंतु इस परिस्थिति में विचलित न होकर धैर्य, सहज तथा सम रहना आर्ट आफ लाईफ है। जीवन जीने की अच्छी कला है। मनुस्मृति में जहां धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं वहां धैर्य (धृति) को पहले स्थान पर रखा गया है। सच पूछिये तो धैर्य ही जीवन का आधार-स्तम्भ है। यहां सब कुछ चल-विचल है, कुछ स्थिर रहने वाला नहीं है। जो आज बहुत कष्टकर, पहाड़-सा कठिन लगता है वही समय निकल जाने पर हास्यास्पद लगता है। एक सज्जन जो हर चीज से सम्पन्न था, परिस्थिति ने जब करवट बदली तो वह करोड़पति से रोडपति हो गया। जो एक समय भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न आलीशान महल में रहता था आज वह एक टूटे-फूटे खण्डहर मकान में रहने लगा। इतना सब होने के बाद भी उसके चेहरे पर जरा-सी भी सिकन नहीं, उदासी का भाव नहीं। उसका चेहरा हमेशा प्रसन्न व मन खिला हुआ रहता था। एक दिन उनका एक मित्र

उनसे मिलने आया। मित्र की स्थिति देखकर उन्हें बड़ा दुख तथा चेहरे पर प्रसन्नता देखकर बड़ा आश्चर्य भी हुआ। उनसे रहा न गया तो अपने मित्र से पूछा— मित्रवर! ऐसी स्थिति में आप इतने प्रसन्न कैसे रहते हैं? क्या आपको तकलीफ, परेशानी नहीं होती? सज्जन ने हंसते हुए कहा—मित्रवर! इसमें परेशानी व तकलीफ क्या? मैंने अपने मकान के चारों ओर पहरेदार जो रखा है। उनके रहते मेरे पास कोई परेशानी, उदासी, चिंता, तनाव आ ही नहीं सकते। मित्र ने कहा—यह आप क्या पहेलियां बुझा रहे हैं। यहां तो खण्डहर के अलावा कोई है नहीं और आप कहते हैं कि मैंने चारों तरफ पहरेदार बैठा रखा है। उस सज्जन ने अपने मकान की दीवारों पर चारों तरफ “यह भी न रहेगा” लिखे वाक्य को दिखाते हुए कहा—देखिये, यही है मेरे पहरेदार। इसके रहते मुझे कोई चिंता-शोक, परेशानी नहीं है। मैं हमेशा यही सोचकर प्रसन्न व धीरज रखता हूँ कि जब मेरा वह दिन नहीं रहा तो यह दिन भी जल्द चला जायेगा, रहने वाला नहीं है।

9. आत्मविश्वास (Self Confidence)—चिंता, डिप्रेशन, तनाव, अवसाद को दूर करने की महत्वपूर्ण चाबी है आत्मविश्वास। विश्वास और आत्मविश्वास व्यक्ति के जीवन में मील के वो पत्थर हैं जो उसके सहारे चलने वाले को मंजिल तक जरूर पहुंचा देते हैं। जिस व्यक्ति में आत्मविश्वास होगा उसका व्यवहार खराब नहीं हो सकता। किसी ने कहा है—

*जिंदगी जीने का मकसद खास होना चाहिए,
अपने आप पर विश्वास होना चाहिए।
जीवन में खुशियों की कोई कमी नहीं होती,
बस जीने का अंदाज सही होना चाहिए॥*

परिवार रूपी किताब के घर के सारे सदस्य पन्ने हैं जो विश्वास रूपी गोंद एवं आत्मविश्वास रूपी सिलाई से एक साथ जुड़े होते हैं। विश्वास रूपी गोंद एवं आत्मविश्वास रूपी सिलाई के टूटते ही परिवार रूपी किताब के सारे सदस्य रूपी पन्ने बिखर जाते हैं। एक बार एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति से कहा—जब परिवार के लोग आप पर विश्वास नहीं करते तो आप क्यों उन लोगों की परवाह करते हैं? इस पर उस सज्जन ने बड़ा सुन्दर जवाब दिया—भाई साहब! रिश्ता निभाने के लिए

होता है, मुकाबला करने के लिए नहीं। मैं रिश्ता निभाता हूँ, मुकाबला नहीं करता। किसी ने बड़ा सुन्दर कहा है—

*जिंदगी में किसी का साथ काफी है,
कंधे पर अपनों का हाथ काफी है।
दूर हो या पास क्या फर्क पड़ता है,
अनमोल रिश्तों का विश्वास ही काफी है॥*

एक लेखक ने लिखा है—विश्वास के अभाव में आज गांवों में “नीम” के पेड़ (आपसी प्रेम) कम हो रहे हैं और बबूल के पेड़ (नफरत, घृणा) अधिक हो रहे हैं। रिश्तों में कड़वाहट बढ़ती जा रही है और जुबान में “मिठास” कम होती जा रही है। एक बार धन, यश और विश्वास जब एक दूसरे से अलग होने लगे तो धन से यश और विश्वास ने पूछा—मित्रवर, अब आप फिर से कहां मिलेंगे तो धन ने कहा—मित्रो! मैं सेठों के गोदामों में मिलूंगा। यश से पूछा गया तो यश ने कहा—मित्रो! मैं परोपकारी, सेवापरायण लोगों के पास मिलूंगा। अंत में जब विश्वास से पूछा गया तो विश्वास ने उदास होकर कहा—मित्रो, जब एक बार लोगों के दिलों से मैं निकल जाता हूँ तो पुनः नहीं मिलता हूँ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज में रहता है। समाज में एक-दूसरे से मिलना-जुलना, बात-व्यवहार करना, लेना-देना, आदान-प्रदान करना जरूरी हो जाता है। मनुष्य समाज से अलग नहीं रह सकता। आदमी जिस परिवार, समाज में जिन लोगों के बीच रहता है उन लोगों पर विश्वास करना जरूरी है, संदेह करके तो रहा नहीं जा सकता। संदेह करके तो आदमी का जीवन नरक हो जाता है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, सास-बहू, भाई-भाई, पड़ोसी-पड़ोसी के बीच जब विश्वास का धागा टूटता है तो कलह, तनाव, अवसाद, चिंता, डिप्रेशन की स्थिति पैदा होती है। संदेह एक ऐसा घुन है जो भीतर ही भीतर अच्छे-भले आदमी को खोखला कर देता है। सद्गुरु कबीर ने कहा है—संदेह, संशय ने संसार के सारे मनुष्यों के मन को उलझा दिया है किन्तु संदेह का निवारण किसी ने नहीं किया है। संदेह का निवारण वही करता है जो शब्दों का विवेकी होता है—

*संशय सब जग खण्डिया, संशय खण्डे न कोय।
संशय खण्डे सो जना, जो शब्द विवेकी होय ॥*

गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा है कि “संशयात्मा विनश्यति” अर्थात् संशयशील व्यक्ति विनाश को प्राप्त होता है। उसे न तो इस लोक में सुख मिलता है न ही परलोक में। संशय चित्त की उस दशा का नाम है जब आदमी निश्चय ही नहीं कर पाता कि क्या करना है और क्या नहीं करना है और जो निर्णय ही नहीं कर पाता वह किसी दिशा में भी सफल नहीं हो सकता। सृजन के लिए, निर्माण के लिए, उत्थान के लिए, कल्याण के लिए, निर्णय चाहिए। आदमी के जीवन में जब प्रतिकूल परिस्थिति पैदा होती है तो आदमी तुरंत घबरा जाता है और तीर्थों-मंदिरों में जाकर तमाम देवी-देवता, भगवान-भगवती पर विश्वास कर उनकी पूजा-उपासना शुरू कर देता है।

फिर भी जीवन से दुख, चिंता, तनाव विदा नहीं होते। कबीर साहेब को शायद इसीलिए कहना पड़ा होगा कि अब भी समय है, मौका है तुम सद्गुरु के वचनों का पालन करो, मान्यताओं का बोझा अपने सिर पर व्यर्थ मत लादो। इस जीवन युद्ध में खुद अपना कल्याण करो और दूसरों के कल्याण में सहायक बनो। मैं खड़ा होकर पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कह रहा हूँ कि तुम स्वयं अपना ईश्वर एवं मालिक हो।¹ किंतु आदमी की ऊपर की आंखें तो फूटी ही हैं, भीतर के विवेक-विचार के नेत्र भी फूट गये हैं अर्थात् चाम के नेत्रों से तो उसे कुछ सूझता नहीं है, भीतर के विवेक-विचार रूपी नेत्रों का प्रयोग करना भी बंद कर दिया है। मनुष्य को परमुखापेक्षी, परावलंबन की भावना को छोड़कर अपने आत्मबल, मनोबल तथा विवेकबल पर विश्वास कर आत्मकल्याण का काम करना चाहिए। भला जिसके आंगन में ही नदी बहती हो वह प्यासा क्यों मरेगा।² एक लेखक ने लिखा है—जिन लोगों को 33 करोड़ देवी-देवताओं पर तो विश्वास है लेकिन खुद पर विश्वास

नहीं है तो तैंतीस करोड़ देवता मिलकर भी उसका उद्धार नहीं कर सकते। और जिन्हें 33 करोड़ देवताओं पर भले ही विश्वास न हो किंतु यदि स्वयं की शक्ति पर विश्वास है तो तैंतीस करोड़ देवता मिलकर भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं कर सकते। किसी ने बड़ा अच्छा कहा है—

उठ बांध कमर क्यों डरता है,
फिर देख खुदा क्या करता है।

अपने ऊपर विश्वास रखकर ही आप दुनिया में बड़े से बड़ा काम आसानी से कर सकते हैं।

इंसानियत आदमी को इंसान बना देती है,
लगन हर मुश्किल को आसान बना देती है।

मधुमक्खी कण-कण से ही शहद इकट्ठा करती है। उसे कहीं से इसका भंडार नहीं मिलता। उसके छत्ते में भरा शहद उसके आत्मविश्वास और कठिन परिश्रम का ही परिणाम है। मधुमक्खी से किसी ने कहा—अरे पगली! आप इतनी मेहनत से मधु इकट्ठी करती हैं और लोग उसे चुरा ले जाते हैं। इस पर मधुमक्खी ने आत्मविश्वास के साथ बड़ा ही सुंदर जवाब दिया—“लोग मेरा मधु ही तो चुरा ले जाते हैं, मेरी कला को तो नहीं चुरा सकते।”

आत्मविश्वास एक ऐसी शक्ति है जिसके बल पर आदमी बड़े से बड़े, कठिन से कठिन काम को भी आसानी से कर लेता है। किन्तु आत्मविश्वास के अभाव में छोटा-सा काम भी आदमी को भारी लगता है, नहीं कर पाता है। आत्मविश्वास जीवन में सफलता के लिए उतना ही आवश्यक है जितना जीने के लिए मनुष्य को आक्सीजन की और मछली को पानी की। आत्मविश्वास के बल पर ही गांधी जी स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। इसी आत्मविश्वास ने कोलम्बस को अमेरिका की खोज में सहयोग दिया। नेपोलियन ने इसी शक्ति से ओतप्रोत होकर अपने सेनापति से कहा था यदि आल्प्स पर्वत हमारा मार्ग रोकता है तो उसे हम चीर कर ही रहेंगे। और सचमुच उस विशाल पर्वत को काटकर रास्ता बना लिया गया। आत्मविश्वास आदमी को सफलता के शिखर पर ले जाता है। आत्मविश्वास मतलब अपने आप पर, स्वयं पर विश्वास। आत्मविश्वास में वह शक्ति है जिसके बल पर आदमी कुछ भी कर सकता है।

—क्रमशः

1. सतगुरु बचन सुनो हो संतो, मति लीजै शिर भार।
हो हजूर ठाढ़ कहत हौं, अब तैं सम्हर संभार॥
2. ऊपर की दोऊ गई, हियहु की गई हेराय।
कहिं कबीर जाकी चारिउ गई, ताको काह उपाय॥
करु बहियाँ बल आपनी, छाड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास॥

(बीजक साखी, 220, 178, 277)

असंगता

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 18-9-2004 को कबीर संस्थान, इलाहाबाद में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।— प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

(गतांक से आगे)

जो दृश्य सामने है वह सदा नहीं रहेगा। आज जो उपलब्धियाँ हैं वे नहीं रहेंगी। आज जो गहमागहमी है, वह मिट जायेगी और जो भीड़ है, वह एक दिन छंट जायेगी। और एक दिन ऐसा भी आ जायेगा कि बोलना भी बन्द हो जायेगा। हम बोलने में भी समर्थ न होंगे।

बहुत बोलनेवाले को भी मौन साधना होगा।

बहुत जाननेवाले को भी स्मृति खोना होगा।

बहुत भीड़ भी छंट जायेगी, टुट जायेगा नाता।

जीव अकेले आया जग में और अकेले जाता।

यह 'हृदय के गीत' का छन्द है। श्री प्रेम साहेब इसको खूब गाते थे और अन्य संतों से भी खूब गवाते थे।

श्री प्रेम साहेब बहुत बड़े प्रवक्ता थे। अन्य प्रवक्ता बोलते-बोलते थक जाते थे लेकिन वे नहीं थकते थे। उनमें प्रवचन करने की ऐसी अद्भुत शक्ति थी कि वे अनवरत बोलते रहते थे और जब वे बोलते थे तो उनके शब्दों के तार नहीं टूटते थे। ऐसे प्रवक्ता वे थे और उनके संतत्व का क्या कहना! वे बड़े उच्च कोटि के संत थे।

वे जब बीमार पड़े और बोलने में असमर्थ हो गये तब उनके पास जब मैं जाता तो विनोद में कहता कि साहेब! "बहुत बोलनेवाले को भी मौन साधना होगा" तो सुनकर वे मुसकरा देते थे। उनका हृदय बड़ा निर्मल था क्योंकि वे एक सच्चे संत थे। हरदम वे मुसकराते रहते थे। जीवन के अंतिम दिनों में बीमारी के कारण वे बोल नहीं पाते थे और हाथ-पैर भी काफी अशक्त हो गये थे लेकिन खूब प्रसन्न रहते थे क्योंकि मन उनका निर्मल था और उनकी कामनाएं बुझी थीं। उनका चित्त उद्वेगशून्य था और उनको संसार से कुछ पाना नहीं था।

यही तो जीवन की कृतार्थता है।

जिसे संसार से कुछ पाना नहीं रहता है वह मुक्त हो जाता है। आप लोग कह सकते हैं कि महाराज, आप ही लोग ऐसा सोचो हम लोग तो गृहस्थ हैं। हमें अभी बहुत कुछ पाने की इच्छा है, लेकिन भाई, अगर पाने की इच्छा करोगे तो बेचैन ही रहोगे। जो पाओगे वह फिर खो जायेगा और आप दुखी होओगे इसलिए पाने की इच्छा न करो। जो सहज प्राप्त हो उसी का बरताव करो। इच्छा करके क्या करोगे। इच्छा करोगे तो इच्छा पूरी नहीं होगी। जितनी इच्छा करोगे उसमें कहीं थोड़ी इच्छा पूरी हो भी जाये तो और इच्छा आकर खड़ी हो जायेगी और उससे तुम्हारा चित्त और जलेगा। इसलिए कुछ इच्छा न करो। जहां हो वहीं श्रम करो। सभी संतों का यही उपदेश है कि श्रमशील रहो। श्रमहीन होकर रहने के लिए कोई भी संत नहीं कहे हैं। संत जन खुद भी श्रमशील रहे हैं।

अमेरिका के एक भक्त ने एक बार मुझसे पूछा था कि क्या महाराज, ऐसे भी संत होते हैं जो दुनिया के कल्याण के प्रपंच में न पड़ते हों। उनका यह प्रश्न बहुत अच्छा था। दुनिया के कल्याण की बात सभी संत सोचते हैं लेकिन फर्क यही है कि संतों में कुछ संत भावुक होते हैं जो सोचते हैं कि मैं तो दुनिया को जगा कर छोड़ूंगा। और इसी जगाने के चक्कर में वे उलझ जाते हैं लेकिन जो विवेकवान संत होते हैं वे समझते हैं कि अपना काम करना है और जो बन सके, दूसरे की सेवा करनी है।

"मैं संसार को जगा दूंगा" यह एक सनक है जो कई लोगों पर सवार हो जाती है। अरे, आप संसार को क्या जगा पायेंगे। आप जग जायें, यही काफी है। मैं ही

जग जाऊं यही काफी है। दूसरे को जगाने का हमारा क्या अधिकार है। हां, जो व्यक्ति सामने मिले हुए हैं उनसे निवेदन कर देना है कि भाई जग जाओ, लेकिन यह दावा नहीं करना है कि हम सबको जगा देंगे। जो जागना चाहेगा वह जगेगा। जो नहीं जागना चाहेगा उसे हम कौन होते हैं जगा देनेवाले! इसलिए यह तृष्णा और यह भ्रम कि मैं जगत-तारक हूँ, अपने को ही डुबायेगा।

मैं अपने आप का तारक हूँ यही पक्की बात है। आप कह सकते हैं कि यह तो अहंकार हो गया। आप ठीक कहते हैं। यह एक अहंकार है लेकिन यह अहंकार कल्याणकारी है। इस अहंकार के आये बिना कल्याण न होगा और यह अहंकार नहीं है किंतु एक वास्तविकता है। यदि हम ही अपने को नहीं तारेंगे तब दूसरा कौन हमें तारेगा। जो गुरु हैं, संत हैं वे तो केवल रास्ता बतायेंगे। तरना हमें ही है।

अपने को तारना क्या है? अपने में जो मोह है, उसको छोड़ना, प्राणी और पदार्थों में जो आसक्ति बनी है उसे छोड़ना अपने को तारना है। थोड़े शब्दों में कहें तो विकारों को छोड़ना ही अपने को तारना है और यह हम नहीं करेंगे तो और कौन करेगा। हमारे मन में जो विकार आते हैं उनको दूसरा कौन छोड़ेगा। दूसरा कौन उससे सावधान रहेगा। हमें ही सावधान रहना होगा। इसलिए यह पक्का विश्वास होना चाहिए कि हम स्वयं अपने आप के उद्धारक हैं और यह केवल विश्वास नहीं है किंतु यही वास्तविकता है।

भक्ति के नाम पर बड़ी-बड़ी कमजोरियां ला दी गयीं हैं। कहा गया है कि अपने को भगवान के ऊपर छोड़ दो। वे ही बेड़ा पार करेंगे लेकिन आप सोचो कि भगवान तो सदा से है और आप भी सदा से हैं लेकिन आपका बेड़ा पार नहीं हुआ तो कैसे माना जाये कि आगे भगवान बेड़ा पार कर देगा। भगवान या परमात्मा बेड़ा पार कर देंगे, यह केवल कहा जाता है, होता नहीं है। अपना बेड़ा आपको ही पार करना पड़ेगा।

ऐसा भावुक आप मत बनो कि सोचने लगे कि अब तो मैं अपने को गुरु महाराज की शरण में डाल

दिया हूँ। अब वे ही जानें। गुरु की शरण में अपने को डाल दिये हो तो अच्छा है। अब वे जो बताते हैं उसको सीखो और उसका आचरण करो। केवल गुरु महाराज ही तुम्हें कैसे तार देंगे! आप ही अपने मन के द्रष्टा हैं। आपके मन का द्रष्टा न कोई गुरु है और न कोई भगवान। आपके मन में क्या उठ रहा है, इसे आप ही जानते हैं। उसे न तो कोई गुरु जानते हैं और न कोई भगवान ही जानते हैं। आप ही को अपने मन की सफाई करनी है और यही वास्तविकता है, यही सच्चाई है। इस सच्चाई को आप स्वीकारें और अपने को सुधारें।

“मैं तो अपने को गुरु की शरण में डाल दिया हूँ, भगवान की शरण में डाल दिया हूँ। अब वे ही जानें और वे ही चाहें तो मेरा बेड़ा पार लगे।” यह परावलम्बी विचार है और यह परावलम्बी विचार कभी भी प्रशंसनीय नहीं होता है। ऐसा विचार, जिसमें बताया गया हो कि दूसरा तुम्हारा उद्धार करेगा, कभी हितकर नहीं है। वही सच्चा उपदेश है जो हमें अपने कदमों पर खड़ा होने के लिए प्रेरित करे। बंधन हमने ही बनाये हैं। उसे हम ही काटेंगे। यह समझ हमारे में होनी चाहिए और इस पर हमें विश्वास होना चाहिए।

“भगवान की माया सबको नचाती है” यह बात पंडित से लेकर अनाड़ी तक कहते हैं। अच्छे-अच्छे विद्वान, अच्छे-अच्छे संत, अच्छे-अच्छे पंडित भी कहते हैं कि भगवान की माया सबको नचाती है। ऐसे भोले लोग अनजान में ही भगवान को दोषी बनाते हैं। भगवान अगर कोई होगा तो वह पवित्र होगा कि अन्यायी? वह किसी को क्यों नचायेगा। आपके गांव में, आपके मुहल्ले में कोई ऐसा आदमी हो जो बड़ा खुराफाती हो और सबको परेशान करता हो तो क्या आप उसको अच्छा मानेंगे?

संसार में ऐसे कुछ बिगाड़ानन्द होते हैं जो दूसरे का काम बिगाड़ने का मानो धन्धा ही करते हैं। हमें बिगाड़ानन्द नहीं किंतु सुधारानन्द होना है। हमें अपना काम तो बनाना है ही, दूसरे का काम भी बने इसका भी ध्यान रखना है। यह संसार बड़ा विविधतापूर्ण है।

अद्भुत-अद्भुत लोग इस संसार में होते हैं। सबको आप समझा नहीं पाओगे और सबको क्या अपने ही बच्चे को समझाना लोहे का चना चबाना है। इसपर तो मैं प्रायः निवेदन किया करता हूँ कि जिनके बच्चे न हों वे निश्चित रहें।

जिनके बच्चे नहीं होते हैं ऐसे लोगों में गोद लेने का मोह होता है। वे सोचते हैं कि किसी के बच्चे को गोद ले लें तब सुख मिलेगा लेकिन इससे सुख कहां मिलने वाला है, यह तो न हुआ दुख बना लेना है। अपनी संतान है तो वह अपना बनाया दुख है। उसको झेलो, क्योंकि झेलना पड़ेगा। उससे बचकर कहां जाओगे लेकिन अगर अपनी संतान नहीं है तो समझ लो कि फिर दुख ही नहीं है। उसके बाद गोद लेने के चक्कर में पड़कर नया दुख न बनाओ। आपका गुजर-बसर हो जायेगा, आपकी सेवा हो जायेगी, सब हो जायेगा। गोद लेकर पहले से ही सरदर्द उठा लो यह कोई समझदारी नहीं है और यह विवेक की बात नहीं है।

यह बात मैं अपनी ओर से कह देता हूँ लेकिन अब कोई गोद लेना ही चाहे तो ले सकता है क्योंकि कहीं-कहीं गोद लेने में ठीक भी हो जाता है। बात है कि इस संसार में रीझना-खीझना तो पड़ता ही है। इस रीझ और खीझ से बचने के लिए अपने मन को विवेक में रखना ही होगा।

मैं कह रहा था कि दुनिया में बिगाड़ानन्द होते हैं इसी प्रकार ईश्वर भी अगर सबका काम बिगाड़ा करता है तो वह भी बिगाड़ानन्द ही होगा। यह बात मैं अपनी ओर से नहीं कहता हूँ किंतु आप लोगों की ओर से ही कहता हूँ क्योंकि आप ही लोग तो कहते हैं कि भगवान की माया ने, ईश्वर की माया ने हमें भटका दिया है। ईश्वर की माया ने आपको भटका दिया तो ईश्वर फिर बिगाड़ानन्द ही है और जब ईश्वर बिगाड़ानन्द है तो वह पूज्य कहां हुआ।

ईश्वर बिगाड़ानन्द नहीं है। ईश्वर तो विश्व में व्याप्त नियम हैं और नियम एकदम अकाट्य होता है।

उसमें कृपा और कोप नहीं है। उसको पहचानो। यह बड़ा सरल रास्ता है। अब आप माने बैठे हैं कि ईश्वर बैठा है और वह कोप कर देगा, अपनी माया आपके ऊपर डाल देगा तो आप परेशान हो जायेंगे। उसके ऊपर आपका कोई वश नहीं है। इसलिए आप सोचते हो कि उससे चिरौरी-विनती करो, प्रार्थना करो, उसके सामने रोओ-गिड़गिड़ाओ। जब उसका मन हो जाये तब वह आपके ऊपर माया न गिरावे लेकिन बहुत रोने-गाने पर भी वह माया डाल दे तब क्या करोगे। ऐसा मनमती ईश्वर है कि जिसका कुछ ठिकाना ही नहीं है। लेकिन यह किसी व्यक्ति-ईश्वर की ही बात होगी। वही आपको नाजायज परेशान करेगा। जो नियमरूपी ईश्वर है वह बड़ा इंसाफी है। उसकी तरफ से आप बिलकुल निश्चित रहें।

उस नियमरूपी ईश्वर से आपको न विनती करना है और न प्रार्थना करना है, न उसको मनाना है। उसको केवल परखना है और परखकर नियम से चलना है। हां, उसके साथ यह है कि वह आपके पापों को काट नहीं सकेगा। नियम-ईश्वर में क्षमा नाम की चीज ही नहीं है। लेकिन व्यक्ति-ईश्वर ऐसा है कि अगर प्रार्थना करोगे तो वह पाप काट देगा और बिना आपके मेहनत के ही वह ऋद्धि-सिद्धि दे देगा। व्यक्ति-ईश्वर की उपासना में यही प्रलोभन है लेकिन ऐसा व्यक्ति-ईश्वर कहीं नहीं है जो प्रार्थना से प्रसन्न होता हो, पाप काटता हो और मुक्तिगति देता हो। नियम-ईश्वर सब जगह है।

नियम-ईश्वर न किसी के ऊपर कृपा करता है और किसी के ऊपर कोप करता है। वह ज्यों का त्यों है। उसको परखो-पहचानो और उसका आचरण करो। उससे आप निश्चित रहो। पवित्र आचरण से रहो तो कोई तकलीफ नहीं है और पवित्र आचरण से न रहो तो तकलीफ मिलनी है। पाप किये हो तो पाप करना बन्द कर दो और अब उसके विपरीत अच्छा करो तो वह पाप धुल जायेगा और जीवन निर्मल हो जायेगा। यदि हम अच्छा करेंगे तो हमारा मन निर्मल हो जायेगा और हम कल्याण के पात्र हो जायेंगे। आप अपने जीवन को

स्वयं उठाने का प्रयास करो। यह पक्का समझो कि विश्वव्यापी नियम ही ईश्वर है। हम भावुक हैं इसलिए इस नियम ईश्वर को भी भावुक बना देते हैं। दुनिया के मनीषियों ने इस पर सोचा है।

ईश्वर की कल्पना हम अपने अनुसार करते हैं। एक घोड़ा हो और वह यदि ईश्वर की कल्पना करे तो वह यही कल्पना करेगा कि ईश्वर एक सुन्दर घोड़ा है। एक हाथी उसकी कल्पना करे तो यही कल्पना करेगा कि ईश्वर एक सुन्दर हाथी है। मनुष्य उसकी कल्पना करता है तो उसे वह एक सुन्दर मनुष्य के रूप में कल्पना करता है, घोड़ा और हाथी के रूप में कल्पना नहीं करता है।

मनुष्य जो कुछ करता है उसे वह ईश्वर के ऊपर भी आरोपित कर देता है। मनुष्य प्रार्थना-पूजा से खुश होता है तो ईश्वर को भी वह पूजा और प्रार्थना से खुश होनेवाला मान लिया है और उसको भी वह पूजा और प्रार्थना से खुश करने के चक्कर में पड़ा है। मनुष्य अपने अनुसार ईश्वर के एक प्रतिरूप की कल्पना करता है और वह प्रतिरूप असली ईश्वर नहीं होता। जो असली ईश्वर है, वह यह सब नहीं है। वहां तो न प्रार्थना की जरूरत है और न पूजा की जरूरत है।

प्रार्थना और पूजा की जरूरत तो मां-बाप और गुरुजनों को है। बड़ों की और मां-बाप की पूजा करो यानी सत्कार करो। पूजा का मतलब है सत्कार और प्रार्थना का मतलब है विनम्र वाणी का प्रयोग। अखण्ड कीर्तन करना प्रार्थना नहीं है। पिता के नाम पर आप अखण्ड कीर्तन न करें। कीर्तन अपने पिता की करो या न करो किंतु उनकी आज्ञा मानो और उनकी सेवा करो। यही उनकी प्रार्थना है। प्रार्थना और पूजा बड़ों के लिए है।

ईश्वर नियम है। वहां प्रार्थना-पूजा की जरूरत नहीं है। नियम को पहचानने और उसके अनुसार चलने की जरूरत है। इतना किया जाये तो समझ लो कि ईश्वर की पूजा हो गयी। आप केवल नियम से चलो।

जीवन यात्रा में जो कुछ मिलता है उसी में अपने को डालकर हम अपने को खो देते हैं। उन्हीं में हम

रीझते-खीझते हैं। अनेक संस्कारों का कंटीला मार्ग हम बनाते हैं और जीवन भर उसी में उलझ-उलझकर मरते हैं और कहते हैं कि हम उन्नति कर रहे हैं।

बहुत धन बढ़ जाये, बहुत जन बढ़ जाये तो लौकिक दृष्टि से जरूर उन्नति है लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से तो पतन है क्योंकि उन सबको संभालना पड़ता है, निभाना पड़ता है। उनमें पड़ने से अपने कल्याण का काम ही नहीं हो पायेगा। उन्हीं में आप उलझे रहो तो फिर राग-द्वेष और भी बढ़ेगा।

चीजें बढ़ेंगी तो कुसंगी लोग बढ़ेंगे। अधिक धनियों के पास खराब संस्कार वाले लोग ज्यादा इकट्ठे हो जाते हैं। जिसको बड़ा पद मिला कि तमाम अटपट लोग उसे घेर लेते हैं। वे उनके चमचे बन जाते हैं। दुनिया की जितनी शक्ति आपके पास बढ़ेगी, कुसंग उतना ही ज्यादा बढ़ेगा। इसलिए कल्याणार्थी के लिए लौकिक उन्नति हितकर नहीं है लेकिन अगर कोई लौकिक उन्नति होती भी है तो उसको मोड़कर आप सन्मार्ग में लगायें, जन सेवा में लगायें और उसमें आप अपना सौभाग्य न समझें। अपना सौभाग्य तो है अपने को असंग बनाने में। हर समय यह निरख-परख रखना कि मेरे साथ कुछ नहीं है, यही अपने को असंग बनाना है।

मैंने अभी कहा था कि हमारा यह जीवन हमारी किताब है। इस किताब को हम पढ़ें। जब से हम होश में आये हैं तब से आजतक के जीवन को हम देखें और सोचें कि कितना कुछ स्थिर है। पीछे का सब बह गया और वर्तमान में भी जो है वह भी बहा जा रहा है। इसलिए कहीं आप रीझें-खीझें न। रीझ और खीझ जीवन यात्रा में निरन्तर चलते हैं। उसमें उलझन होती है और उस उलझन में हम अपने आपको उलझा देते हैं। अनुकूल-प्रतिकूल दोनों झूठे हैं और जीव अकेला है। अपने अकेलेपन का अनुभव करें। यहां ध्यान का जो अभियान चलाया जा रहा है यह अकेलेपन का अनुभव कराने के लिए ही है।

ध्यान का अंतिम स्वरूप क्या है? “योगश्चित्तवृत्ति निरोधः” योग क्या है? चित्त की वृत्तियों का निरोध।

चित्त की वृत्तियां शांत हो जायें, मन की वृत्तियां शांत हो जायें तब ध्यान है। जैसे पानी तो रहे लेकिन उसमें लहर न उठे उसी प्रकार मन तो रहे लेकिन उसमें कल्पनाओं की तरंगें न उठें, लहरें न उठें। मन में स्मरणों का प्रवाह शांत हो जाये यही ध्यान है। स्मरणों का प्रवाह शांत हो गया तो आत्मा अपने आप में मगन हो गया। स्मरणों का प्रवाह चलता है तो इसका मतलब है कि आत्मा उसमें डोल रहा है, चंचल हो रहा है। स्मरणों का प्रवाह जैसे ही बन्द होता है वैसे शांति आ जाती है। स्मरणों का प्रवाह शांत होना ही ध्यान है। कुछ न करना ध्यान है।

न बोलना, न देखना, न सुनना और न सोचना ही सच्ची साधना है। जब ऐसा हो गया बस काम खत्म।

*यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥*

जब पांचों इन्द्रियां मन और बुद्धि के सहित स्थिर हो गयीं तब यही परम गति है।

*चश्म बंदौ, गोश बंदौ, लबबि बन्द।
गर न बीनी सरेंहक बरमन बखन्द।*

किसी सूफी संत ने यह कहा है कि आंखों को बन्द कर लो, कानों को बन्द कर लो, आँठों को बन्द कर लो, इतने पर भी यदि सत्य के दर्शन न हो तो मेरा मजाक उड़ाना। उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—“यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा”—जब दूसरे को नहीं देखता, दूसरे को नहीं सुनता, दूसरे को नहीं जानता, यही भूमा की स्थिति है। भूमा की स्थिति को पाना है तो देखना, सुनना, जानना बन्द करो।

*समुझि बूझि जड़ होय रहे, बल तजि निर्बल होय।
कहहिं कबीर ता संत का, पला न पकरे कोय ॥*

पहले समझ-बूझ ले फिर अनाड़ी बन जाये और सारे बल के घमण्ड को छोड़कर निर्मान हो जाये। ऐसे संत का पल्ला कोई पकड़ नहीं सकता है। वह एकदम सबसे न्यूट्रल हो जाता है, उदास हो जाता है। वह सबको छोड़ दिया और असंग हो गया। “असंगो ह्ययम् पुरुषः” यह पुरुष असंग है। जन्म से ही, जब से हम होश में आये, तब से हम अपने को सबमें डाल-

डालकर उलझा लिये हैं। “यह मेरा, यह मेरा, यह मेरा”—इसी में हम उलझे रहते हैं। जीवनभर झूठी चीजों के मालिक हम बने रहते हैं लेकिन मालिक बनने का मतलब क्या है—धोखा खाना।

हम मालिक हैं इसका मतलब है कि हम धोखे में पड़ गये। किसके मालिक हम हैं? अरे, सबसे निकट तो यह अपना शरीर है और जब हम अपने शरीर के ही मालिक नहीं हैं तब दूसरे का मालिक कब हो सकते हैं। संयम की दृष्टि से तो हम अपने शरीर के मालिक हैं। संयम में इसे हम रख सकते हैं लेकिन परिवर्तन की दृष्टि से हम इसके मालिक नहीं हैं। एक भी उजले बाल को हम काले में नहीं बदल सकते। आजकल तो लोग तमाम रंग लगाकर उजले बालों को काले कर लेते हैं उसकी बात मैं नहीं करता हूँ। वह तो नकलीपना है।

चाम की सिकन को हम रोक नहीं सकते फिर किस वस्तु के हम मालिक हैं। इसलिए मालिक बनना धोखा है और इतना ही नहीं, मालिक बनना इतना पाप कराता है कि हद है। आप देख लीजिए कि जब चुनाव आता है तब क्या होता है। जो शूरवीर लोग हैं उनको चुन-चुनकर टिकट दिया जाता है। वे जिसमें शूरवीर हैं, आप लोग जानते हैं। ऐसे लोग समाज को भटका कर गद्दी पर आते हैं और खराब राजनीति करते हैं। आज भी राजनीति में अच्छे लोग हैं। फिर भी संसारी लालसावाले भी तो हैं ही।

राजनीति में मालिक बनने के लिए कितना अपराध किया जाता है। मठों में महंत बनने के लिए, गुरु बनने के लिए, पता नहीं कितना छल-छद्म चलता है, आपाधापी होती है, मारामारी होती है, मुकदमेबाजी होती है। सब जगह ऐसे ही होता है यह मैं नहीं कहता हूँ क्योंकि ऐसे भी संत हैं जो निष्कामी हैं। वे कुछ चाहते ही नहीं हैं। लोग उनको घेरकर जिम्मेदार बनाते हैं तो सेवा के लिए वे लग जाते हैं। ऐसे लोग पहले भी होते रहे हैं और आज भी हैं लेकिन ज्यादातर तो आपाधापी का चक्कर होता है। कहीं भी कुछ पाने की इच्छा होगी तो पाप शुरू होगा। इसलिए कुछ पाने की इच्छा न करें

किंतु सहज जो मिले उसका उपयोग करें। मेहनत करें और जो सहज मिले उसका उपयोग करें।

मैं कह रहा था कि किसी के मालिक हम नहीं हैं। मालिक होना धोखा है क्योंकि इस जीव के पास कुछ नहीं है। जीव अकेला है। जितना मिलता है वह सब बाँयोस्कोप का तमाशा है—आया और गया। हमारा शिशुपन गया, बचपन गया, बालपन गया, कौमार्य गया, जवानी गयी, अधेड़पन गया और अब बुढ़ापा आ गया। यह भी एक दिन जानेवाला है। तब क्या रुकनेवाला है।

अपनी असंगता का निरंतर अनुभव करना ही साधना है। “हमारे हम हमको यादि रहे”। “हमारे केवल हम हैं” यह हमें याद रहे। हमारा कोई नहीं है और हमारा कुछ नहीं है। आत्मा का आत्मा ही है और कुछ आत्मा का नहीं है। आप यह भी कह सकते हैं कि केवल परमात्मा है और कुछ नहीं है। तब भी बात वही हुई। आत्मा और परमात्मा दो नहीं हैं, एक ही है। आत्मा की शुद्ध स्थिति ही परमात्मा है। आप छोटे नहीं हैं, तुच्छ नहीं हैं और दुखरूप नहीं हैं। आप दीन-हीन नहीं किंतु महान हैं। आप स्वयं कृतार्थरूप हैं, स्वयं कल्याणरूप हैं। आप में महान बल है। आप में बल की कमी नहीं है। संकल्प शक्ति आपकी सोयी है। जैसे घोड़ा अपने शरीर के समस्त रोयें को एकबारगी फड़फड़ाकर झाड़ देता है, हमें भी चाहिए कि जैसे ही हम भी एकदम जग जायें, फड़फड़ाकर अपने मन को झाड़ दें और जबतक जीवन है तबतक अनासक्तिपूर्वक बरताव करें।

अनावश्यक बरताव और व्यवहार में न उलझें। जो व्यवहार है उसको भी समेटकर चलें। जो व्यवहार आवश्यक नहीं है उसको समेट लें लेकिन जो व्यवहार आवश्यक है उसे अनासक्तिपूर्वक करें। उसमें यह साधना निरंतर चले कि “मैं अकेला हूँ और मेरा कोई नहीं है। मेरा कुछ नहीं है। मैं अकेला हूँ और मैं अपने आप में महान तृप्तस्वरूप हूँ। दुख नाम की चीज मेरे में नहीं है।” हम तो “मानि मानि बंधन तर आवा, निज करतब मंह आप बंधावा।” और—

*ज्यों सुवना ललनी गहो, कीट कुश्यारी मांझ।
तैसी गति या जीव की, भई दिवस ते सांझ॥*

मान-मानकर ही हम बंधन में आये हैं। अपने करतब में हम खुद अपने आप को फंसाये हैं। जैसे सुग्गा नलिकायंत्र में फंसकर पिंजड़े में बन्द हो जाता है वैसे ही हम सुख के चारे में फंसकर अपने को दुख देते हैं। काल ही यह विषय-सुख का चारा लगाता है, यमदूत ही यह विषय-सुख का चारा लगाता है। यमदूत मन है।

*झूठेहि जनि पतियाउ हो सुनु संत सुजाना।
तेरे घटही में ठग पूर है मति खोवहु अपाना॥*

साहेब यहां बड़ी करुणा से कहते हैं कि हे सुजान संत और हे सुजान साधको! झूठे में विश्वास मत करना। तेरे घट में ही ठग भरा है। यह मन विषयों को स्वर्णिम वर्क लगाकर रखता है और दुनिया की चमक-दमक में उलझाता है। इसलिए जागो, चमक-दमक झूठे हैं। अपनी असंगता का बोध करो। ध्यान में रहो। ध्यान अपनी असंगता में ठहरना है।

ध्यान किसका करना है। न ज्योति का ध्यान करना है न नाद का। न बिन्दु का ध्यान करना है न किसी के चित्र का किंतु इन सारे ध्यान को खत्म कर देना है। सारे विचारों को खत्म कर देना है। जब सारे विचारों को खत्म कर दिया गया तब आत्मा अपने आप है। इसी दशा को ऋषि कहते हैं—“असंगो ह्यम् पुरुषः।”

यह अपनी पक्की स्थिति है लेकिन यह स्थिति यदि नहीं हो पाती है अथवा हर समय नहीं रह पाती है तो कोई पवित्र आधार ले लो और उसमें अपने मन को ठहराओ। अभ्यास करो और विचारों का यह प्रवाह सदा बना रहे कि मैं अकेला हूँ। मेरा इस संसार में कुछ नहीं है। संबन्ध है, व्यवहार है, इस व्यवहार को कुशलतापूर्वक, सद्भावपूर्वक और शीलभावपूर्वक सबसे बरत देना है और अपने आपको सब समय सबसे छुड़ाये रखना है। इसी में हमारी बुद्धिमानी है लेकिन अगर हम अपने को मोह में फंसाये तो समझ लो कि बस गये काम से। मोह ही फांसी है। “मोह सकल व्याधिन कर मूला” यह गोस्वामी जी महाराज ने कहा है और “माया मोह बंधा सब लोई” यह कबीर साहेब ने कहा है। महाभारतकार कहते हैं—

अपना-पराया

लेखक—दिनेन्द्र दास

नारायण के घर में घुसते ही रमा ने बड़बड़ाना शुरू कर दिया। प्रश्न पर प्रश्न की झड़ी लगा दी “बताओ! आप रात में कहां थे। वैसे भी आजकल देर रात में आते हो और कुछ बताते नहीं हो।”

“मां का फोन आया था कि बेटा, मैं बीमार हूँ तो मैं घर चला गया था। वहां उनकी स्थिति देखकर मैं उन्हें ले आया, साथ में बाबूजी भी आये हैं। बाहर बरामदे में बैठे हैं।”

“आप कहे, तो वे लोग भी आ गये! कुछ ही दिन पहले वे दोनों एक महीने रहकर गये थे, फिर आ गये।” मुंह को मरोड़ते हुए चेहरे में उदासी भाव से पुनः रमा बोल पड़ी—“घर को धर्मशाला बना रखा है। जब देखो तब तुम्हारे रिश्तेदार, गांव के लोग आते ही रहते हैं। बीस हजार रुपये वेतन में घर-गृहस्थी का खर्च ले-देकर चलता है। फिर दो लोगों को यहां टिका रहे हो। सिर पकड़कर रमा फिर झुंझलाती हुई बोली—“पप्पू खिलौने के लिए रट लगा रहा है, रिंकी के लिए फ्राक चाहिए, मुझे साड़ी खरीदनी है, फिर राशन भी खत्म हो गया है, बिजली बिल पटाना है, गैस सिलेण्डर भी खाली हो गया है। यह सब कहां से मेंटन होगा।”

“अरे सब हो जायेगा देवी जी! चिंता करने की कोई बात नहीं है। जाओ बड़ी दूर से आये हैं मां-बाबूजी को पानी तो पिला दो।”

रमा की बात सुनते हुए मां-बाप सिर नीचे कर अपमानित भाव से लज्जित होकर सोफे पर बैठे थे। रमा दो गिलास में पानी लेकर बरामदा में गई तो देखते ही उसके पैर नीचे से धरती खिसक गई। फिर नारायण से बोली—“तुम्हें साफ-साफ बताना चाहिए था न कि मेरे मां-बाप हैं।”

“तुम्हें क्या बताता। अब मैं इन लोगों को अभी इसी वक्त इनके घर पहुंचाता हूँ। जब मेरे मां-बाप तुम्हारे मां-बाप नहीं हो सकते तो तुम्हारे मां-बाप मेरे मां-बाप कैसे हो सकते हैं!”

अब रमा को अपनी गलती का एहसास हो गया और नारायण के चरणों में गिर पड़ी। फिर बोली—“मुझे माफ कर दीजिए, मुझसे भारी गलती हो गई।”

रमा की मां बोली—“बेटी! हम लोग जा रहे हैं। अब पराये के घर रहना अच्छा नहीं है।”

रमा रोती हुई बोली—“मुझे माफ कर दीजिए मां जी, इसे अपना घर समझिए।”

रमा को डांटते हुए उसके पिताजी बोले—“क्या हम लोगों ने तुझे यही संस्कार दिये हैं। माफ तो तभी करूंगा जब अपने सास-ससुर को मां-बाप के समान समझोगी।”

“पिताजी! अब ऐसी भूल कभी नहीं होगी।”

—► अस्मिन्महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।

मासर्तुदर्वी परिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता॥

महा मोह का कड़ाहा है जिसमें सब प्राणी पड़े हैं। सूर्य की आग लगी है। रात-दिन का ईंधन है। मास और ऋतु की करछुली है। काल सबको उलट-पलटकर भून रहा है। परिघट्टन का मतलब है—समेटना, उलटना, पलटना, रगड़ना।

हम जब सब्जी बनाते हैं तब ऐसे ही तो करते हैं। कड़ाहा में सब्जी को डाल देते हैं और उसे करछुली से

समेटते हैं, उलटते हैं, पलटते हैं और रगड़ते हैं। संस्कृत में इसके लिए एक ही शब्द है “परिघट्टनेन।” हम परिघट्टन करते हैं। काल भी सबका मानो परिघट्टन कर रहा है। सबको उलट-पलटकर भून रहा है। जो कुछ हमारे पास है सब भूना जा रहा है। फिर क्या अहंकार है, किसका अहंकार है। इसलिए अपनी असंगता, अपनी निर्मलता का अनुभव करो और अपने आप में कृतार्थ होओ। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ। □